आत्मा - एक अनुपम अनुभव

सुरेन्द्र गोखरू

आत्मा

आत्मा एक अदृश्य, अभौतिक लेकिन अनन्त शक्ति का स्त्रोत है | हर प्राणी में "जीव शक्ति" आत्म-शक्ति से ही उपलब्ध होती है | आत्मा प्रत्येक जीव में है | आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति आदि से परिपूर्ण है | आत्मा हमारे शरीर और अन्य सभी जीवों के शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग के साथ है | आत्मा दिखती नहीं है, लेकिन आत्मा से ही देखने की शक्ति प्राप्त होती है |

> जीव के अस्तित्व के लिए अर्थात् शरीर के निर्माण, विकास और संचालन के लिए, आत्मा अपेक्षित शक्ति स्वतः उपलब्ध कराती है | मानव सोचकर, जो भी करना चाहे उसके लिए अपेक्षित-शक्ति, अनन्त आत्म-शक्ति से ही स्वतः उपलब्ध होती है |

मृत्यु के समय आत्मा और कर्म का शरीर ,भौतिक शरीर से निकल जाते है |मृत्यु के पहले और मृत्यु के उपरान्त भौतिक शरीर तो हमेशा ही जड़ (पुद्गल) था, जड़ है और जड़ ही रहेगा | मृत्यु के उपरान्त भौतिक शरीर चल फिर नहीं सकता, देख नहीं सकता, सोच विचार नहीं कर सकता आदि | मृत्यु के पहले, आत्मा की मौजूदगी के कारण ही "भौतिक शरीर" के मन, वचन, काया द्वारा, अनेक प्रकार के भौतिक, मानसिक, भावात्मक, सृजनात्मक कार्य होते थे | इन सब कार्यों के लिए, आत्मा से ही अपेक्षित जीव-शक्ति स्वतः प्राप्त होती थी |

आत्मा को कोई "परमात्मा का अंश" मानता है तो कोई इसे "स्वतन्त्र आत्मा-शक्ति" मानता है - परमात्मा नहीं | कोई कोई इसे दिव्य ज्योति, नूरे इलाही आदि नाम से जानते हैं |

आत्मा का सर्वोपरि महत्व :

अपने जीवन में, हम जो कुछ भी कर रहें हैं, जिसके लिए भी कर रहें हैं, उसका केवल एक ही उद्देश्य है - "सुख" मिले | संसार में किसी एक परिस्थिति में सुख मिलता है लेकिन वह परिस्थिति स्थायी नहीं रह सकती और कुछ समय बाद अन्य परिस्थिति प्रस्तुत होती है, जो दुःख का कारण बन जाती है | जीवन भर स्थायी सुख नहीं मिल पाता - लेकिन ऐसा सम्भव है - यही इस लेख का उद्देश्य है |

स्थायी सुख के लिए आत्मा को अर्थात स्वयं के वास्तविक, स्थायी, परम शक्तिशाली और आनन्दमय स्वरूप को जानकर, अहसास कर आनन्द में जीना है | यही "**आत्म-जागृति**" है | अंत में केवल आत्म-स्वरूप में ही रह जाना - होजाना नहीं (Not Becoming but Being) **आत्म-अनुभूति** है | "आत्म-ज्ञान" ही सर्वोच्च ज्ञान है, सर्वोच्च धर्म है | मानव जीवन की सार्थकता इसी ज्ञान-धर्म के प्रकट होने में है |

आत्मा **शरीर, मन, बुद्धि और कर्म रहित** है, जो मेरे, आपके और अन्य प्रत्येक जीव में है |

आत्मा के बारे में निम्न शास्त्रों में अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है और आत्मा के अवर्णनीय महत्व को, आत्मा के अनन्त गुणों द्वारा समझाया गया है |

(1) जैन दर्शन के अनेक शास्त्र, आत्म-सिद्धि शास्त्र और समय सार सहित
(2) श्रीमद् भगवद गीता
(3) अष्टावक्रगीता
(4) अथर्व वेद से जुड़े उपनिषद् - आत्मा उपनिषद और माण्डूक्य उपनिषद्
(5) यजुर्वेद से जुड़े उपनिषद - ईशा, कथा (कठो), तैत्तरीय उपनिषद
(6) ऋग्वेदीय से जुड़ा आत्मप्रबोधनोपनिषद्

आत्म साधना का लक्ष्य व परिणाम :

आत्म साधना का लक्ष्य अपने "वास्तविक स्वयं को जानना" (Self-realisation) और अंत में "उसी में स्थित हो जाना" है, चाहे शुरू में वो एक पल के लिए ही क्यों न हो |

वास्तव में "आत्मा, अपने अनन्त आनन्दमय और अनन्त गुणमय स्वरुप में" हमारे साथ पहले से ही है, केवल उसका "प्रकट" होना है | यही "**आत्म-साधना**" का परिणाम है |

मृत्यु के समय यह शरीर तो छूट जायेगा, और मुक्त दशा में कर्म भी छूट जाते हैं, लेकिन "**निज-शुद्ध-आत्मा**", जो अनादि काल से है, अनन्त है, शाश्वत (Permanent) है - वो रहेगी | अतः "स्वयं" का "वास्तविक और स्थायी स्वरूप" केवल "अनन्त गुणों से परिपूर्ण निज-शुद्ध आत्मा" है | हमारा नाम, शरीर, मन, बुद्धि, कर्म आदि अस्थायी (Temporary) है - ये सब बदलते हैं और जो बदलते हैं वो "वास्तविक स्वयं" नहीं हो सकते |

"वास्तविक स्वयं" केवल "शुद्ध आत्मा" है, जिसमें अनन्त शक्ति, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि, है | ऐसे "आत्म-स्वरुप" - "आत्मा के अनन्त-गुणों" के साथ, की जागरूकता (Awareness) ही "**आत्म-जागृति**" है अर्थात "वास्तविक स्वयं की समझ का पहला हिस्सा" है (Self-Realisation – First part) | इसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता, बुद्धि नहीं लगानी पड़ती | विवेक से ऐसे स्वरूप की समझ आने के बाद, एक दिन **"मैं"** के बजाय उसी "शुद्ध-आत्म-स्वरूप में रह जाना" ही "**आत्म-अनुभूति**" है अर्थात "वास्तविक स्वयं की समझ का दूसरा हिस्सा" है (Self-Realisation - Second part) है | यही "आत्म-साधना" है | आत्म-साधना की यात्रा किसी के लिए अनन्त की यात्रा है, तो किसी के लिए एक दो या तीन जन्मों से अधिक नहीं |

"आत्म-अनुभूति की निरंतरता" ही "निरन्तर सुख" अर्थात् "परम आनन्द" का अनुभव करा सकती है | "आत्म-अनुभूति की निरंतरता" के बाद "केवल ज्ञान" अर्थात् "पूर्ण आत्म-ज्ञान" का प्रकट होना, आत्म-अनुभव की पराकाष्टा है | इसके बाद, आयुष्य कर्म के अनुसार आयु पूरी होने पर जीव की मुक्त दशा अर्थात मोक्ष स्थिति अपने आप हो जाती है |

आत्म-जागृति :

"निज आत्मा" और "उसके अनन्त गुणों" के "अस्तित्व" में "पूर्ण-निशंकित-अखंडित-श्रद्धा" के साथ, "जागरूकता" रखते हुए, "अनन्त आत्म-शक्ति" का स्वतः "उपयोग" होने पर, "किसी भी समस्या या दुःख का तुरन्त समाधान" पाकर, "परम आनन्द का अहसास" होना ही, आत्मा को "**जानना**" है (मानना नहीं) | यही "आत्म-जागृति" है - यही "आत्म-ज्ञान की शुरुआत" है |

मानना, जानना और ज्ञान :

हम "मानते" (Believing) तब है, जब हम "**अपने अनुभव**" से पूर्णतया **"जानते नहीं हैं"** जैसे हम भगवान को "मानते" हैं, लेकिन "जानते" नहीं हैं | हम "मानते" हैं कि, किसी को दुःख देना अच्छा नहीं है, लेकिन हम इस बारे में "पक्का जानते" नहीं है, अतः इसका "ज्ञान" नहीं है | अगर हम "जानते" होते अथवा हमें "ज्ञान" होता तो हम किसी को दुःख नहीं देते | हाँ, "कोरा ज्ञान" जरुर है | ज्ञान वो है जो आचरण में पक्का उतर जाय और जरुरत पड़ने पर सहजता से काम आजाय | हमें ज्ञान है 2+3 = 5 | स्वप्न में भी हमें कोई पूंछे 2+3 = कितना, तो हम बता देंगें 5 |

व्यक्ति कई प्रकार की "**मान्यताओं**" और "**रीति रिवाजों**" को मानकर, अज्ञान की तरफ बढ़ता है | वास्तव में अपने कर्म ही सब समस्याओं का कारण है और सही पुरुषार्थ ही समस्याओं का निवारण है |

किसी दर्शन, तंत्र, मंत्र, पूजा-पाठ, गुरु, देवी-देवता आदि में "श्रद्धा" / "आस्था" या "विश्वास" या भरोसा आदि से कुछ काम बनता है | मान्यताओं में "पूर्ण श्रद्धा" आधारित "शक्तिशाली सांसारिक मन" रहता है, जिससे कई बार मनचाही सांसारिक इच्छा पूरी हो जाती है | मनचाही इच्छा पूरी होने का कारण है "**आकर्षण का सिद्धांत**" (Law of attraction) | इस सिद्धांत के अनुसार मन से "श्रद्धा आधारित सांसारिक मन की तरंगें" उठती हैं, जो मनचाही वस्तु अथवा मनचाही शक्ति को अपनी ओर खींचना शुरू कर देती है, समान आवृत्ति (Frequency) की वजह से | लेकिन हर बार मनचाही इच्छा पूरी नहीं होती है क्योंकि मन की शक्ति सीमित है, इसलिए इसका लाभ भी सीमित है | कुछ इच्छायें बाकी रह जाती है, जो पूरी नहीं हो पाती | इसके अलावा और नयी इच्छायें भी पैदा हो जाती है | ये सब इच्छायें मानव को जन्म-जन्मान्तर तक संसार के दुःख-सुख के भंवर में उलझा कर रख देती है |

आत्म-जागृति में असंभव प्रतीत होने वाली सोच भी सम्भव :

मन की सीमित शक्ति भी, आत्मा की अनन्त शक्ति से ही उपलब्ध होती है | इसलिए बेहतर यह है कि, सीधे तौर से "आत्मा" की अनन्त शक्ति को ही काम में लिया जाय |

"आत्म-जागृति" में, "सांसारिक मन" का अभाव रहता है, अतः "सांसारिक इच्छाओं" का भी अभाव रहता है | "आत्म-जागृति" में "आत्मीय मन" रहता है, जिससे आत्मीय प्रेम, सरलता, निस्वार्थ सेवा भाव, समता, स्वचालित-संयम (अंकुश आधारित नहीं) आदि की उपलब्धता रहती है | इसके अलावा "अनन्त आत्म ज्ञान" के प्रभाव से, स्वतः ही कितने ही प्रकार के "मूल ज्ञान की समझ" आती रहती है |

"आत्म-जागृति" समर्थित "आत्मीय मन" के "उपयोग" से "हताश, बैचेनी और अन्य किसी दुःख" के पलों में "आत्म-सुख" का अनुभव होना एवं "हितों और विचारों के टकराव" में "समता" और "सहज समर्पण भाव" का आना, सहज हो जाता है | "समता" और "सहज समर्पण" के लिए जितनी शक्ति चाहिए, वह आत्मा की "अनंत शक्ति" के मुकाबले बहुत कम है | ऐसी समझ से तुरन्त "समता" और "सहज समर्पण" हो जाता है और "आनन्द" का अनुभव हो जाता है | इस प्रकार "अनन्त आत्म-शक्ति" के बारंबार "सफल उपयोग" के अनुभव से, आत्मा को "बेहतर जानना" हो जाता है |

"आत्म-जागृति" में, अनन्त आत्म-शक्ति, अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द का "अहसास" होता है, इसलिए उसका "स्वतः उपयोग" होता है | "आत्म-जागृति" की पुनरावृति होने पर असत्य, चिड़चिड़ापन, गुस्सा, अभिमान, लोभ, परिग्रह, मोह जाल में फंसना, माया से भटकाना, माया में अटकना, नाम-मान-सम्मान की इच्छा, इर्ष्या-द्वेष, कई प्रकार की मान्यताएं, डर आदि गहराई से छूटते जाते हैं | अगर इनका दिनों दिन, अधिक बारिकी से छूटने का क्रम जारी नहीं रहता है, तो आत्म जागृति नहीं है |

कितनी ही बार "कर्मों के प्रभाव" एवं "सहज-आत्म-पुरुषार्थ की कमी" के कारण आत्म-जागृति नहीं रह पाती है, तब असंभव लगने वाले कार्य पूरे नहीं हो सकते |

"आत्म जागृति" में आत्म-शक्ति के उपयोग की प्रक्रिया :

"आत्म शक्ति का उपयोग" का एक उदाहरण - जब कोई हमारे साथ अनुचित व्यवहार करे, अपमानित करे, हमारी गलती न होने पर भी हमारी गलती निकाले, हमें हमारी इच्छा के विरुद्ध काम करने को मजबूर करे आदि, तब हम हमारी "आत्मा के साथ" होजायं |

"आत्मा के साथ होने" का अर्थ है - आत्मा की "अनन्त शक्ति" में पूर्ण विश्वास के कारण, उस अनन्त शक्ति का तुरन्त उपयोग होजाना | अगर आत्मा की "अनन्त शक्ति" में पूर्ण श्रद्धा है तो **समता,** समभाव, करुणा और सहजता से बुरा नहीं मानने के लिए जो शक्ति चाहिए, वह तो आत्मा की अनन्त

शक्ति के सामने अत्यंत कम है | अतः "आत्मीय प्रेम" भाव तुरन्त प्रकट होगा और किसी का हमारे प्रति अति अनुचित आचरण का भी बिलकुल बुरा नहीं लगेगा + आत्मा के अनन्त "आनन्दमय स्वभाव" का भी स्वतः उपयोग होने के कारण, हमारा चित्त "आनंदमय" हो जायेगा |

आत्म-जागृति में "आत्मा के साथ" होने में, अहंकार का किंचित मात्र भी भाव नहीं आ सकता | यह "आत्म-जागृति" का सीधा उपयोग है |

वैसे किसी का भी हमारे प्रति, कैसा भी अनुचित व्यवहार हो तो भी हमें बिलकुल भी बुरा नहीं लगेगा, अगर हमें निम्न 2 प्रकार की समझ आजाय |

पहली समझ : मेरे ही कर्म का फल है | पूर्व में मैंने भी इनके साथ, ऐसा ही अनुचित व्यवहार किया था, अतः अभी वो भी वैसा ही अनुचित व्यवहार मेरे साथ कर रहे हैं - मेरी ही गलती थी | अच्छा हुआ, मेरे कर्म तो कटे, मेरे मन में इनको धन्यवाद | अब संतोष कर प्रसन्न चित्त में आ जाओ |

दूसरी समझ : उनकी गलती नहीं है क्योंकि उनका डिजाइन अर्थात उनका स्वभाव ही ऐसा है | शेर गुर्राता है | हाथी धीरे धीरे चलता है | चिड़िया तेज उड़ती है | कोई मानव संत है तो कोई मायावी है और कोई अज्ञानी है | इन सब के अलग अलग आचरण में, किसी की की गलती नहीं है | प्रत्येक जीव का अलग अलग डिज़ाइन है अथवा मजबूरी है | "डिजाइन-नियंत्रित-बेबस-व्यवहार" के लिए किसी को भी बुरा समझना मेरी मूर्खता है |

"**जो जैसा है, वही सत्य है**"

वैसे उपर्युक्त दोनों प्रकार की समझ को समझने का थोड़ा प्रयास करें तो बहुत सरल है | बस समय पर इसका ध्यान आ जाय और उपयोग किया जाय तो आनन्द प्रकट होने में देर नहीं लगेगी | इसके लिए जो शक्ति चाहिए, वह तो अनन्त आत्म-शक्ति से मिल ही जायेगी |

अगर आत्मा की सीधी समझ अति कठिन लगे तो कम से कम "उपर्युक्त सामान्य 2 प्रकार की समझ" और साथ में "थोड़ा अहंकार और लोभ" कम कर लें, तो सब "रिश्ते-नाते" सम्बंधित और "अन्य समस्याओं" का समाधान आसान है |

आत्म-अनुभूति :

कभी न कभी "आत्म-जागृति" के पलों की पुनरावृति से, कुछ समय के लिए "आत्म-जागृति की निरंतरता" रह सकती है | ऐसी स्थिति में कभी न कभी, एक पल के लिए, अपने "वास्तविक स्वयं" अर्थात "शुद्ध-आत्म-स्वरूप" का प्रकट होना संभव है | तब शरीर, मन, बुद्धि और कर्म हावी नहीं होते हैं और जीव अपने "आत्म-आनन्द" भाव में अर्थात "मुक्त दशा" में रहता है | ऐसा अनुभव ही "आत्म-अनुभव" अर्थात "आत्म-साक्षात्कार" अर्थात "आत्म-अनुभूति" है | "आत्मा" मन, बुद्धि और कर्म से "परे" है | "आत्मा" अंतरिक्ष / आकाश और समय (Space & Time) से भी "परे" है | आत्मा को बुद्धि और मन से नहीं जान सकते | जब तक मन अथवा बुद्धि का प्रयोग है, आत्मा की अनुभूति नहीं हो सकती | आत्मा को किसी बाहरी क्रिया, ध्यान, आचरण, तप आदि से नहीं जान सकते |

"**आत्मा को आत्मा से ही जान सकते हैं**"

हमारा शरीर, मन, बुद्धि, कर्म आदि सब बदलते रहते हैं और जो बदलते हैं वो "वास्तविक स्वयं" के हिस्से नहीं हो सकते | "स्वयं" का "वास्तविक और स्थायी स्वरूप" केवल "निज-शुद्ध-आत्मा" है - "अनन्त आत्म-गुणों" से परिपूर्ण | ऐसे "स्व-स्वरुप" का "स्व-प्रकट-अनुभव" ही "आत्म-अनुभूति" है, चाहे यह एक क्षण के लिए ही क्यों न हो | ऐसे क्षणिक अनुभव के बाद, आत्म-अनुभव की स्मृति रह जाती है, आत्म-अनुभव नहीं |

"आत्म-अनुभूति" के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता, बुद्धि नहीं लगानी पड़ती | भाग्य और "सहज-आत्म-पुरुषार्थ" अर्थात ऐसे स्वरूप की समझ आने की प्राथमिकता से, विवेक से, एक न एक दिन "मैं का भाव" सहजता से पूर्णतया छूटने पर, "शुद्ध-आत्म-स्वरूप" का "प्रकट होना" ही "आत्म-अनुभूति" है |

"आत्म-स्वरुप में रहने की "निरंतरता" ही निरंतर सुख" का अनुभव करा सकती है"

"आत्म-अनुभूति" की "निरंतरता" के बाद "केवलज्ञान" अर्थात् "पूर्ण-आत्म-ज्ञान" अर्थात "समग्र और सर्वज्ञ ज्ञान" का प्रकट होना, परम-आत्म-अनुभव की चरम सीमा है | केवलज्ञान के पश्चात, "आयुष्य कर्म" के अनुसार आयु पूरी होने पर जीव स्वतः पूर्ण-मुक्त हो जाता है (मोक्ष स्थिति) |

आत्म-जागृति और **आत्मअनुभूति** के बीच अंतर :

आत्म जागृति में 2 अस्तित्व रहते हैं - "मैं" और "आत्मा" | "आत्म-अनुभूति" में 1 ही अस्तित्व रहता है - केवल "आत्मा" का, तब शरीर अर्थात शरीर, मन, बुद्धि, कर्म आदि का "अहसास" नहीं रहता है |

दुःख सुख भरी जीवन यात्रा अरबों वर्षों से जारी है, कब तक जारी रखें ?

निरंतर "इच्छा रहित" होना अर्थात् "विचार रहित" होना ही परम आनन्द एवं शान्ति की अवस्था है | कुछ समय के लिए विचार रहित रहना, "अल्पकालिक शान्ति" की अवस्था है |

मन में, किसी "इच्छा का विचार" आते ही, शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक - जाने अनजाने में कोई "क्रिया" करना या करवाना या अनुमोदन करना "कर्म" है | कोई "कर्म" अगर "राग युक्त" है, तो "कर्म का बंधन" हो जाता है, अन्यथा नहीं | किसी भी "क्रिया" (Action) के अनुरूप, कभी न कभी "प्रतिक्रिया" (Reaction) की परिस्थिति तो बनती है - यह वैज्ञानिक तथ्य है | "बंधन मुक्त" होने की "स्वचालित प्रतिक्रिया" की "परिस्थिति" प्रस्तुत होने पर, अगर हमने "अपनी तरफ से प्रतिक्रिया" अर्थात नई क्रिया कर दी तो नया "कर्म-बंधन" हो जाएगा |

"शुभ या अशुभ राग युक्त क्रिया" से "शुभ या अशुभ कर्म फल" के कारण, जीव "सांसारिक सुख दुःख" भोगता है | "सांसारिक दुःख" तो दुःख है ही | लेकिन "सांसारिक सुख भी अन्ततः दुखदायी" है | कोई भी सुखदायक व्यक्ति, वस्तु, वातावरण, विचार आदि "स्थायी" नहीं है - या तो उसमें "परिवर्तित" आएगा या उसका "साथ" छूटेगा, तब दुःख होगा | अर्थात इच्छा-पूर्ति होने पर जो "सांसारिक सुख" का अनुभव होता है, वह हमें "भ्रमित" करता है |

"परिवर्तनशील एवं अस्थायी प्रकृति" वाले सब जीव, सब पदार्थ कभी भी "स्थायी सुख" नहीं दे सकते | इसके अलावा "इच्छाओं की पूर्ति" के लिए, संघर्ष करते समय, हम स्वयं तो कष्ट पाते ही हैं, लेकिन हम अज्ञान से अथवा स्वार्थवश, अन्य को भी कितना कष्ट देते है, इसका हमें अंदाजा भी नहीं है |

मृत्यु के पहले कुछ कर्म-फल और कुछ इच्छाएं बाकी रह जाती है - यही पुनर्जन्म का कारण है | जब तक सब इच्छाओं का अंत नहीं होगा, हमारा जन्म - मृत्यु का चक्र चलता रहेगा |

"अनादि काल" से हम कितने ही जन्म ले चुके हैं | हर जन्म में वही भ्रमित सुख और दुःख का अनुभव करते रहते हैं और करते रहेंगे जब तक सब इच्छाओं के बजाय एक ही इच्छा रह जाय कि हमारा फिर जन्म नहीं हो या अगले जन्म कम से कम हों |

कभी कभी हम थपेड़े खाते खाते, यह "समझ" जाते हैं कि अब "वो इच्छा या वो गलती और नहीं", फिर भी गलती दोहराते हैं और कितने ही प्रयत्नों के बाद भी पूर्ण काम नहीं बनता है | केवल "आत्म साधना" ही इसका उपाय है | "आत्म-साधना" की यात्रा किसी के लिए अनन्त की यात्रा है, तो किसी के लिए एक दो जन्मों तक की | मानव जीवन की सार्थकता इसी लक्ष्य को प्राप्त करना है |

अंत में समझ में आया :

* "संसारी जीव का स्वभाव" ही किसी न किसी से "राग-द्वेष" करना है, जो "कर्म बंध" का कारण है | अतः परिणाम स्वरूप, कर्म फल भोगते समय भ्रमित सुख दुःख में जीने की बाध्यता है | मानव में इस बाध्यता से छुटकारा पाने की क्षमता है, गहरी समझ और आत्म-साधना से |
* "निज आत्मा का स्वभाव" ही अनन्त "आनन्द, शान्ति, शक्ति, ज्ञान आदि" से परिपूर्ण है | हम चाहते हैं कि सब हमें आनन्द, शान्ति और आज़ादी से जीने दे, हमसे प्रेम पूर्वक रहें, हमसे झूंठ नहीं बोले, चालाकी, दिखावा आदि नहीं करे, हम पर गुस्सा नहीं करे, ज़रूरत पड़ने पर सब हमारी स्वतः सहायता करने के लिए तत्पर रहे | यह भी "हमारा स्वभाव" है | अतः जैसा "व्यवहार" हम अन्य से अपने लिए चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार हम अन्य के साथ भी करें और "आत्म-साधना" भी करें, ताकि हमारा जीवन "कर्मों के प्रभाव से मुक्त होकर", आनन्दमय हो जाय |

आत्म-साधना :

आत्म साधना का अर्थ है आत्म-पुरुषार्थ अर्थात आत्म तत्व और आत्म-गुणों को समझ कर, "**आत्म-जागृति**" में रहना | तत्पश्चात आत्म-जागृति की निरंतरता से, "निज-आत्म-स्वरुप" का प्रकट होना और उसी स्वरुप में स्थित रहना, अर्थात **आत्म-अनुभूति** होना, आत्म-साधना की पूर्णता है | आत्म-साधना के लिए, निम्न बाधाओं को पहले दूर करना है |

मान्यतायें - आत्म साधना में बाधक :

कितने ही प्रकार के "विपरीत" विश्वास अथवा "असंतुलित" - कम या अधिक - विश्वास के कारण अपने लिए वास्तव में क्या हितकर है और वास्तव में क्या अहितकर है, इसकी "**यथार्थ** और **संतुलित**" **समझ**" नहीं हो पाती | सांसारिक सुख को वास्तविक सुख, मोह को प्रेम, अधर्म को धर्म, धर्म को अधर्म, अनुचित को उचित, असत्य को सत्य और सत्य को असत्य आदि मानते है | कितनी ही प्रकार के अंधविश्वास और क्रिया कांड में फंसे रहते हैं, अतः हम अपने "वास्तविक आनन्दमय स्वरूप निज आत्मा" की समझ और उसका चामत्कारिक उपयोग का अनुभव नहीं कर पाते | जैन दर्शन में इसे "मिथ्यात्व" कहते हैं |

मन एवं इन्द्रियों की आसक्ति - आत्म साधना में बाधक :

हम "मन एवं इन्द्रियों की आसक्ति" के कारण "अनावश्यक और असंतुलित" विषय भोग करते हैं | **"आहार**" केवल रसना इन्द्रिय से नहीं, वरन मन से और बाकी इन्द्रियों से भी अन्दर लेते हैं - जैसे आंखों से रमणीय रूप, कान से मनोरम ध्वनि, नाक से सुहानी सुगंध, स्पर्श से संतुष्टि, लुभावने विचार मन से | सब प्रकार के आहार यथोचित मात्रा में ठीक है, परन्तु इनकी "अनावश्यक एवं असंतुलित" मात्रा मन को कलुषित करती है, जो आत्मा के अनुभव में बाधक है |

एक प्रकार की "**विषय-वासना**" के बारे में, एक छोटा सा उदाहरण है - हलवा खाना छोड़ दिया तो रसगुल्ला खाना शुरु कर दिया | शक्कर खाना छोड़ दिया तो गुड़ खाना शुरु कर दिया | गुड़ खाना छोड़ दिया तो शहद खाना शुरु कर दिया | शहद खाना भी छोड़ा तो, भगवान के नाम पर प्रसाद खाना शुरु कर दिया | यह भी छोड़ा तो बंधन-मुक्त दशा अथवा सरलता की आड़ में वापस मीठा खाना शुरू कर दिया | दरअसल हमारी "माया" और "अज्ञान" का अंत नहीं है | इस उदाहरण से यह नहीं समझना कि शक्कर खराब है | शक्कर खाना, कितनी खाना, नहीं खाना, त्याग करना और वापस शक्कर खाना शुरू करना आदि एक अलग विषय-वस्तु है |

कषाय - आत्म साधना में बाधक :

कोई भी इच्छा पूर्ति के समय, अहं जनित "**लोभ**", "**अभिमान**" आदि "**कषाय**" हावी हो जाते हैं | इनके कारण "**माया**" (झूठ, छल-कपट, चालाकी, धोखा, मोह-माया, योग-माया, ईर्ष्या, दिखावा, आदि) और "**क्रोध**" करते हैं और "**डर**" में जीते हैं |

मिथ्यात्व, विषय-वासना, कषाय, डर आदि बुद्धि को भ्रष्ट कर, हमारी बुद्धि हमें अनाचार, दुराचार आदि की तरफ धकेलती है, जो आत्म जागृति में बाधक है |

प्रमाद - आत्म साधना में बाधक :

प्रमाद एक प्रकार का नशा है, जिससे मानव या तो आलस और बेपरवाही में रहता है अथवा किसी "सांसारिक जुनून" के संबंधित कार्य में व्यस्त रहता है | प्रमाद की अवस्था में या तो बेकार की बातों, पर-परिवाद, विषय-वासना आदि में समय बिताता है अथवा "अनावश्यक" कार्यों को "अति आवश्यक" समझ कर, उसी में जीवन व्यतीत कर देता है |

प्रमाद के कई कारण है - अज्ञान, अतिनिद्रा, विषय-वासना, कषाय, सांसारिक मोह-माया आदि | प्रमाद के कारण स्वाध्याय और आत्मा की सोच के लिए समय नहीं मिलता है - आत्म अनुभूति तो दूर की बात है |

मुख्यतया कर्म का प्रभाव और पुरुषार्थ की कमी के कारण, मिथ्यात्व - विषय वासना - कषाय - प्रमाद के प्रलोभन के जाल में फंस कर, हम एक असहाय की तरह, अपना अमूल्य मानव जीवन व्यर्थ में नष्ट कर, कष्ट में जी रहें हैं | जब तक हम इस तरह फंसे रहेँगे, तब तक पुनर्जन्म होते रहेँगे और हम दुःख पाते रहेँगे और अन्य को भी दुखी करते रहेँगे |

असंतुलित आचरण - आत्म साधना में बाधक :

असंतुलित आचरण के हजारों उदहारण है | एक तरफ भव्य मंदिर निर्माण सम्बंधित कार्य के लिए 20 करोड़ रुपये दान में दिए और दूसरी तरफ 20 रुपये के लिए एक गरीब मजदूर अथवा कुली से इन्सानियत का वर्ताव नहीं किया | शिक्षा के लिए लाखों रुपये दान में दिए लेकिन अपने लिए घर और ऑफिस में काम करने वाले व्यक्तियों के बच्चों की स्कूल फीस और दवा आदि के पैसे नहीं दिये | घर में मिठाई पकवान आदि बनें, लेकिन घर में काम करने वालों से शेयर नहीं किया | मानव होते हुए, मानवता का धर्म नहीं निभाया | कितने ही व्रत उपवास, पूजा-पाठ आदि किये - ये सब अच्छे हैं, लेकिन बाकी दिनों असंतुलित भोजन किया और कितने ही प्रकार के अंधविश्वास, लोभ, अहंकार, परिग्रह, पर-परिवाद, इर्ष्या-द्वेष, घृणा, ताक-झांक, किसी का दिल दुखाना, माया, दिखावा, चतुराई वाला आचरण, पद प्रतिष्ठा, आदि नहीं छोड़ा | ऐसे असंतुलित व्यवहार और आचरण से, आत्मा की वास्तविक समझ नहीं हो पाती |

आत्म साधना के क्रमिक चरण :

(1) जीवन के किसी मोड़ पर, यह "**समझ**" आजाय कि सब दुखों और सब समस्याओं से छुटकारा पाकर, "बाकी जीवन स्थायी-आनन्द में जीना है और अगले जन्म काफी कम करने हैं" |

(2) उपर्युक्त समझ की प्राथमिकता के बाद, "**आत्म साधना की तीव्र प्यास**" जगती है और "आत्म साधना" ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन जाता है |

(3) लक्ष्य तय होने के पहले अथवा बाद में, **आत्म-ज्ञान** की "**शुरुआती समझ** (कोरा ज्ञान)" के लिए, निम्न माध्यम, कैटेलिस्ट का काम करते हैं | वास्तविक समझ" तो अपनी आत्मा" से ही आयेगी |

* इन्टरनेट और टीवी के माध्यम से,
* आत्मा सम्बंधित शिविर में भाग लेने से,
* आत्मज्ञानियों के संपर्क से, उनकी पुस्तकें पढने से, उनके प्रवचन सुनने से,

केवल निमित्त से या निमित्त के पीछे पड़ने से आत्मा की गहरी समझ नहीं आयेगी | आत्मा की वास्तविक समझ आत्मा से ही आयेगी |

(4) ज्ञान के सन्दर्भ में, सर्व प्रथम "**मैं वास्तव में कौन हूं**" को जाना जाता है, तब निम्न अच्छी तरह से समझ में आता है |

* वास्तव में, मेरा शाश्वत और अनन्त शाक्तिमय, आनन्दमय स्वरूप" केवल कर्म-रहित शुद्ध आत्मा है और बाकी सब भ्रम है |
* "मेरा कुछ नहीं और मेरा कोई नहीं" **:** मेरे जन्म के समय, मेरा कुछ नहीं था और मृत्यु के बाद भी मेरे साथ कुछ नहीं जायेगा | मेरा शरीर, मेरे पदार्थ, मेरे रिश्ते-नाते आदि यहीं रह जायेंगें |
* मेरा कोई नहीं के सन्दर्भ में एक दूसरी दृष्टि जरूरी है | जैसा मेरा "वास्तविक स्वरूप" आत्मा है, वैसे ही सब जीवों का "वास्तविक स्वरूप" आत्मा है, आत्म-गुणों से परिपूर्ण | इस नाते से, हम सब एक बिरादरी के हैं - प्राणिमात्र के प्रति, मेरा मैत्री भाव का नाता है | ऐसी स्थिति में, यह भावना रहे कि, मेरी तरफ से, मेरी वजह से, किसी को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दुःख नहीं हो और सबसे "आत्मीय प्रेम" से रहने का मानस बन जाय | ऐसे भाव दिनों दिन सुदृढ़ होते रहें |

(5) इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए, **शारीरिक और मानसिक दशा बाधक नहीं हो** | इसके लिए **:**

* साधारणतया नियमित रूप से घूमना, व्यायाम, प्राणायाम, सात्विक सीमित आहार, स्वाध्याय और ध्यान की आदत पड़ जाय |
* और मिथ्यात्व + विषयवासना + कषाय + डर + प्रमाद + असंतुलित आचरण की स्थिति ऐसी रहे, जो आत्म साधना में बाधक नहीं बने | पेज 6 और 7 पर इस बारे में वर्णन है |

(7) आत्म साधना में, "**ध्यान**" और "**मनन**" का अत्यधिक महत्व है |

ध्यान और मनन की निरंतरता और सोच से गहराई में उतरने के लिए, वातावरण के लिहाज से कोई बाधा नहीं हो |

* उपयुक्त समय रात्रि 2 से 4 बजे का है | इस समय शान्ति का वातावरण रहता है |
* शरीर की स्थिति (Posture) आरामदायक हो |

एकाग्रता और रचनात्मक सोच के लिए, निम्न प्रकार के ध्यान के अभ्यास सहायक हैं **:**

* **100 से 99 से 1 से 0 तक उलटी गिनती** करना, हर पल अंक की लिखावट पर ध्यान रखते हुए और बिना किसी अन्य विचार के | बीच में कोई अंक छूट जाय, तो वापस 100 से शुरू करना है | फिर दुबारा यही करना | इस तरह सुचारू रूप से दोहराना |
* **प्राकृतिक श्वास पर ध्यान :** हर पल श्वास पर ध्यान रखते हुए, गहराई से श्वास अन्दर लेना, ऑटो रुकना, श्वास बाहर छोड़ना, ऑटो रुकना | ऐसे प्रति श्वास की स्थिति का 4 स्टेप में ध्यान करना है | हर पल इतना ही ध्यान कि श्वास कहाँ पर है | अभ्यास से, अपनी तरफ से श्वास अन्दर, रुकना, श्वास बाहर आदि पर नियंत्रण छुट जायगा |
* **कुंडलिनी जागरण** ध्यान
* अंतर्मन में केवल **झींगुर की आवाज़** निरन्तर सुनाई दे, जैसे जंगल में रात्रि के समय सुनाई देती है | इसके अलावा अन्दर से कोई विचार नहीं उठे और बाहर की कोई आवाज़ नहीं सुनाई दे |
* अंत में **सृजनात्मक ध्यान** के लिए "<u>वास्तव में कोई ध्यान नहीं</u>" :

अंतर्मन की शून्यता (शाम्भवी मुद्रा) का अभ्यास किया जाय | बाहर की कोई आवाज़ नहीं सुनाई दे और अन्दर से भी कोई आवाज़ नहीं सुनाई दे - झींगुर की आवाज़ भी नहीं - कोई विचार भी नहीं आये - कोई भी विघ्न नहीं हो | इस अभ्यास से "अत्यन्त शान्ति" का अनुभव होता है | लेकिन ऐसा "**निर्विचार ध्यान**" शुरू में केवल 5 से 10 सेकंड तक ही रहता है और बाद में अभ्यास से ध्यान का समय बढ़ जाता है | ऐसे सृजनात्मक ध्यान से शरीर की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाती है और सोचा हुआ काम बनने में आसानी हो जाती है |

* उपरोक्त प्रकार के ध्यान के अभ्यास में निपुणता के बाद, निम्न अभ्यास किया जाय :
  श्वास पर ध्यान नहीं दिया जाय, उसे प्राकृतिक रूप से चलने दिया जाय और निम्न विचारों का "अहसास करते हुए", मन में दोहराना :
  - यह "शरीर" (Body) "मेरा" नहीं है |
  - यह "मन" (Mind) "मेरा" नहीं है |
  - मेरे "भावावेश" (Emotions) "मेरे" नहीं है |
  - मेरी "बुद्धि" (Intellect) "मेरी" नहीं है |
  - मेरे "कर्म" (Karma) "मेरे" नहीं है | कर्म को "मेरा" समझते ही कर्म अपना प्रभाव दिखाते हैं |
  - मैं "प्रसन्न" हूँ - मैं "शान्त" हूँ | "मैं दिन भर ऐसे ही प्रसन्न और शान्त रहूँगा" |
  - "मैं" केवल "सत-चित-आनन्द स्वरूप हूँ" |
    "सत" का अर्थ है - मुझ में और सब जीवों में "सत्य का अस्तित्व" अर्थात् शुद्ध आत्मा / परमात्मा का अस्तित्व है |
    "चित" का अर्थ है उस "सत का लक्षण चेतना" (Consciousness) |
    "आनन्द" का अर्थ है - उस "सत-चित का प्रकट-परिणाम" अर्थात "अनन्त आनन्द" है |

    ऐसे अभ्यास करते करते, एक क्षण ऐसा भी संभव है कि, "मैं-मेरा-मेरे" भाव नहीं रहें, अतः इनसे सम्बंधित अहसास भी नहीं रहे - "केवल शुद्ध-आत्म-स्वरूप रह जाय", तब "आत्म-अनुभूति" की क्षणिक झलक संभव है |

चेतन - आत्मा और जड़ - शरीर के बीच में अस्थायी (इसलिए भ्रमित) "मैं" और "मेरा" रूपी "अहंकार" की पूर्ण समाप्ति होने पर, स्थायी (इसलिए वास्तविक) "शुद्ध-आत्मा" का "स्वरूप" (अनन्त ज्ञान, शक्ति, शान्ति, आनन्द आदि गुणों से परिपूर्ण) प्रकट हो जाता है | तब आत्मा, शरीर, मन, बुद्धि अथवा किसी का भी ध्यान या अहसास ओझल हो जाता है | ऐसा **अनन्त-स्व-आत्म-स्वरुप** में "होना" ही (आत्मा का भी अहसास नहीं) "**आत्म-अनुभूति**" है, चाहे वो एक क्षण के लिए हो |

आत्म साधना का पहला परिणाम - आत्म जागृति :

जीवन की कोई भी क्रिया "स्व-आत्म-जागरूकता" (Auto-awareness) से, "अनन्त-आत्म-शक्ति" के "उपयोग" से हो - यही "आत्म-जागृति" है, जो आत्म-साधना का पहला परिणाम है |

"अनन्त आत्म-शक्ति" का उपयोग तभी संभव है, जब निज आत्मा की अनन्त शक्ति, अनन्त सुख आदि में "निशंकित और अखंडित श्रद्धा" हो (कोरा ज्ञान अथवा अंधविश्वास नहीं) | यही "आत्म-जागृति" का आधार स्तम्भ है | अपने पूर्व कर्म के प्रतिफल के कारण परिस्थितियां, समस्यायें उत्पन्न होगी | "आत्म-जागृति" से, किसी भी परिस्थिति में किसी भी समस्या से आनन्दपूर्वक निपटना संभव है | यही "आत्म-साधना" का पहला परिणाम है | "**निज-आत्मा**" के सिवाय सब "**पर**" है | किसी भी "पर" में "**मोह**" से मन का अटकना, "आत्म-जागृति की निरंतरता" में बाधा उत्पन्न करता है |

अतः सब "जीव" और "अजीव" से "राग" हटाना है - लेकिन "सबसे पवित्र आत्मीय प्रेम" से भी रहना है | अब प्रश्न यह है कि, "राग / मोह" के बिना कैसे प्रेम हो ? | "आत्मीय प्रेम करने वालों" में, यह मूल समझ होती है कि, सब जीवों में वही आत्मा है, जो मुझ में है | अतः सब मेरी ही बिरादरी (fraternity) के हैं | इस दृष्टि से मेरा सबसे स्वाभाविक आत्मीय प्रेम भाव है - ऐसे "**समभाव**" से, सबसे **"राग रहित प्रेम"** संभव है |

आत्म साधना का दूसरा एवं अंतिम परिणाम - आत्म-अनुभूति (आत्म-साक्षात्कार):

"**स्वयं**" (Self) का "शुद्ध आत्म स्वरूप प्रकट होने पर", आत्मा के परम आनन्दमय स्वरूप में अनन्त गुणों और स्वभाव का अनुभव ही "**आत्म-अनुभूति**" है - तब "मैं" और "मेरा" आदि का कोई अस्तित्व नहीं रहता है - शरीर-मन-बुद्धि-कर्म का भी भान नहीं रहता है | आत्म-अनुभूति, आत्म साधना का दूसरा और अंतिम परिणाम है |

अगर इसी जन्म में, "आत्म पुरुषार्थ" से "आत्म-जागृति" की "शुरुआत" नहीं हुई, तब पता नहीं कितने जन्मों बाद "आत्म-अनुभूति" होगी - और कब हम "भ्रमित करने वाले" और "कष्ट दायक" सुख और दुःख से छुटकारा पायेंगे ? और कब हम "अन्य को कष्ट" देने की हिंसा से स्थायी रूप से बच पायेंगें |

"आत्म - जागृति" होने पर, इस लेख में व्यक्त करने के 3 कारण :

- "कोई भी इच्छा" कितनी ही अच्छी या बुरी हो, आखिरकार दुःख का कारण होती है | किसी भी इच्छा को, गहरी समझ और सहजता से निकाल नहीं पाये, तो दृढ संकल्प कर, अभ्यास से समाप्त करना ठीक है | लेकिन अगर इच्छा परम आनन्दमय "आत्मा" सम्बंधित विचार साझा करने की हो तो, इच्छा को पूरी करना ही उचित लगा |
- यह लेख लिखते समय, काफी चिंतन होता रहा और अज्ञात ज्ञान मालूम पड़ा | मेरे बारीक दोषों का पता लगने पर, कई दोष-पर्याय को सुधारने का अवसर मिला और अभी तक मिलता आ रहा है |
- मेरे जैसे अवकाश प्राप्त व्यक्ति के लिए, ऐसे कार्य में जुड़ने से, समय का सार्थक उपयोग हो गया |

इस लेख में योगदान :

"**आत्म-साधना**" के पथ पर जो अनुभव हुआ उसे इस लेख में लिख दिया | अगर आपको कहीं पर अनुचित लगे तो चर्चा के लिए स्वागत है, अथवा आपको इसमें कुछ अच्छा लगे, तो कृपया यह समझना कि इसमें "मेरा योगदान" किंचित मात्र भी नहीं है | इसके निम्न कारण हैं :

- पूर्ण सत्य और पूर्ण ज्ञान तो आत्मा का ही है |
- इस लोक में, 6 तत्व (द्रव्य) है | ये सब तत्व अनादि अनन्त काल से हैं | प्रत्येक द्रव्य का "स्व-संचालन", "निश्चित नियमों" द्वारा स्वतः हो रहा है | आत्मा के अलावा 5 द्रव्य के बारे में, जो कुछ इस लेख में लिखा, वह वैज्ञानिक मापदण्ड से सही साबित हो गया है | अतः इस बारे में भी मेरा योगदान नहीं है |
- इस लेख में बाकी और कुछ लिखा, वह संतो की वाणी और शास्त्रों में लिखित ज्ञान से, जो मेरे अनुभव में आया, उसी ज्ञान का प्रतिबिम्ब है |
- फिर भी अगर प्रश्न है कि, "मैंने किससे सिखा ?", तो इतना ही कहना है कि, गत कितने ही वर्षों से, जो भी जीव-अजीव मेरे संपर्क में आये, उनका और मेरा बदलता रूप, घटनाएँ, सांसारिक ज्ञान-विज्ञान की पढाई आदि - इन सब से सीखने को मिला | इन सब का योगदान है, लेकिन "सीमित" है, जो अक्सर "भटकाने वाला" और "अटकाने वाला" है |

- सब से बड़ी कृतज्ञता, उस **उपादान** के लिए, जिसके कारण मुझे यह मानव-जीवन मिला | मानव जीवन में "आत्मा" से ही "आत्म पुरुषार्थ" करने का अवसर मिला - "आत्म-जागृति" से "आत्म ज्ञान अनुभूति की झलक" तक |

ब्रह्माण्ड, लोक, अलोक, सूरज, पृथ्वी, हम और आत्मा :

अब तक की वैज्ञानिक खोज से यह ज्ञात हुआ कि, स्पष्ट रात्रि में जो आकाशगंगा (Milkyway-Galaxy) नज़र आती है, वह हमारा "**ब्रह्माण्ड**" (Universe) है | हमारी आकाशगंगा का व्यास (dameter) करीब 1,000,000,000,000,000,000 किलोमीटर (करीब 100,000 प्रकाश वर्ष) है | 1 प्रकाश सेकंड = प्रकाश की स्थिर गति प्रति सेकंड = करीब 3,00,000 किलोमीटर है | ऐसे कितने ही ब्रह्माण्ड हैं, जो हमें नज़र नहीं आते हैं | हमारा सूरज आकाशगंगा का ही हिस्सा है, जो आकाशगंगा की सगीत्तरियस आर्म (Sagittarius arm) से करीब 247,000,000,000,000,000 किलोमीटर दूर है |

आकाशगंगा में, अरबों तारे हैं, अपने "सूरज" की तरह | उनमें से कुछ तारे "सौरमंडल" के हिस्से हैं, जैसे अपने "**सूरज**" की तरह, जिसके चारों तरफ, कुछ सम्बंधित गृह परिक्रमा करते रहते हैं | अपने **सौरमंडल** के चारों तरफ 12 तारों का **समूह-नक्षत्र** (Constellation) भी है, जो परिक्रमा करता रहता है | हमारे सूरज का वजन करीब 2,000,000,000,000,000,000,000,000,000,000 टन है और हमारी आकाशगंगा का वजन सूरज के वजन से करीब 700 अरब गुना है | सूरज का वजन, पृथ्वी के वजन से 333,000 गुना है | हमारे ब्रह्माण्ड के एक भाग में जहाँ जीव और पदार्थ है, आकाश (Space) सहित, जैसे हमारी पृथ्वी आदि, उसे "**लोक**" कहते है और जहाँ ये नहीं है, वो "**अलोक**" है |

इतने बड़े ब्रह्माण्ड में हमारी पृथ्वी एक छोटासा कण है, जिसमें हमारा अस्तित्व बहुत छोटा है | इतने बड़े ब्रह्माण्ड में कितने ही अत्यन्त वजनी और गतिशील तारे, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र आदि हमारे इस अति छोटे से भौतिक शरीर और मन को "प्रभावित" करते है | तथापि एक अदृश्य और वजन रहित हमारी "**आत्मा**" अनन्त शक्तिशाली है, जो सब "प्रभाव" को बेअसर कर "अनन्त आनन्दमय" जीवन जिलाने में समर्थ है |

तत्व ज्ञान :

इस लेख में उपयोग किये गये कुछ आधारभूत शब्दों, खासतौर से "आत्मा" सम्बंधित, के बारे में स्पष्टीकरण प्रस्तुत है |

द्रव्य (लोक में 6 मूल तत्व) :

लोक (हमारा संसार हमारे लोक का एक भाग) में "मूल रूप" से, अलग अलग दर्शन के अनुसार 1 तत्व है - सब जीव अजीव प्रकृति आदि (इन सब में 1 परमात्म-तत्व की अभिव्यक्ति) या 2 तत्व हैं - जीव और अजीव या 3 तत्व हैं (सात्विक, राजसिक, तामसिक) या 5 या 6 या 9 या 32 या 118 (रसायन) तत्व हैं |

वैज्ञानिक दृष्टि से और जैन दर्शन से हमारे लोक में "मूल रूप" से 6 तत्व तर्क संगत लगते हैं, जो स्वतन्त्र तत्व हैं और ये तत्व, एक दूसरे पर निर्भर नहीं है |

इसके सिवाय लोक में कुछ भी नहीं है | जैन दर्शन में 6 "मूल तत्व", "द्रव्य" नाम से जाने जाते हैं |

(1) **आत्मा** = चेतन = जीव-शक्ति (Life Energy) का स्रोत (Source) - आठ कर्म रहित :
यह अदृश्य, अभौतिक और शाश्वत तत्व है - अनादि से अनन्त काल तक | आत्मा (चेतन) का लक्षण चेतना / चेतनता (Consciousness) है |

(2) **पुद्गल** = जड़ अर्थात चेतना रहित भौतिक पदार्थ एवं पदार्थीय शक्ति (Physical matter & Physical energy, without consciousness) : पुद्गल के उदहारण है जीव के 5 प्रकार के शरीर, 8 कर्म, मन, बुद्धि, 118 रासायनिक तत्व (सोना, चांदी, ऑक्सीजन आदि), प्रकाश, गरमी, विद्युत्, चुंबकत्व आदि | पुद्गल परिवर्तनशील और भ्रम पैदा करने वाले हैं, अर्थात् अनित्य और असत्य है (सत्य शाश्वत होता है और भ्रम पैदा नहीं करता है - वह आत्मा है) | पुद्गल मूर्त है अर्थात् वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले हैं |

लोक में सब पुद्गल परिवर्तनशील है | एक दृष्टि से, पुद्गल का परिवर्तन, सड़न, गलन और नाश के रूप में होता है, लेकिन संपूर्ण दृष्टिकोण से कुछ भी नष्ट नहीं होता है | भौतिक शास्त्र के एक नियम से यह सिद्ध हो चुका है कि, सकलता से (In Totality) कुछ भी अतिरिक्त सृजन या नष्ट नहीं होता है | भौतिक वजन, (वजन + ऊर्जा के बराबर वजन) हमेशा उतना ही रहता है | वजन और ऊर्जा आपस में परिवर्तनशील है | ऊर्जा और वजन के सम्बन्ध का फार्मूला है :

$E = mc^2$, where

E = Energy अर्थात् ऊर्जा (शक्ति)

m = mass पदार्थ की मात्रा (वजन)

c = velocity of Light (प्रकाश की गति) 3,00,000 किलोमीटर/सेकंड

प्रकाश की गति स्थिर है', मीडियम-रहित वैक्यूम और इनर्सिअल फ्रेम ऑफ़ रेफ़रन्स में |

(In Inertial frame of reference, all objects follow 2 laws of Inertia. An example is Environment of a moving object in a moving train, both moving at different velocities, but at constant linear velocity in each case, with no acceleration)

1 Kg सोना और **1 Kg मिट्टी** (दोनों पुद्गल) की **समान कीमत :**

उपर्युक्त फार्मूले से 1 Kg सोना और 1 Kg मिट्टी में समान ऊर्जा है | अतः दोनों की कीमत समान है, क्योंकि, किसी की "वास्तविक उपयोगिता" उसकी "ऊर्जा" की मात्रा से तय होती है | उपयोगिता से कीमत निर्धारित होती है | यह समझने के बाद, सोने का अनावश्यक मोह भंग हो जाता है |

60 किलो "वजन" का व्यक्ति या 60 किलो "वजन" का कोई भी पदार्थ, दोनों में ऊर्जा समान है, जो $E=mc^2$ फार्मूला से, निम्न है |

60 Kg = 1288 MEGATONS TNT की ऊर्जा (शक्ति) = 1496,000,000,000 KWH (Units) बिजली के उपभोग की मात्रा | भारत का 2015-16 में कुल बिजली का उपभोग (ग्रह, व्यवसाय आदि) = करीब 1400,000,000,000 KWH था |

(3) **धर्मास्तिकाय** = जीव या पुद्गल की "गति" में "स्वतः स्थिरता बनाए रखने में तटस्थ / निष्क्रिय रूप से सहायक शक्ति", अनन्त काल तक, जब तक कोई अन्य शक्ति गति में बाधा नहीं डाले :

(Inactively-helping power, to maintain Constant-auto-motion, unless extra force is applied to change the direction or speed of the motion)

विज्ञान में यह "न्यूटन का गति का पहला नियम का पहला भाग" है |

धर्मास्तिकाय-द्रव्य-शक्ति के कारण, अंतरिक्ष में चन्द्र-यान, बिना इन्धन के 4 लाख किलोमीटर की दूरी तय करता है, और आगे भी, उसी गति से, चलता ही रहेगा, अनन्त काल तक, बिना इन्धन के, जब तक दूसरा रोकेट फायर करके उसकी गति को कम नहीं करें |

(4) **अधर्मास्तिकाय** = जीव अथवा पुद्गल की "स्थिर स्थिति" में "स्वतः स्थिरता बनाये रखने में तटस्थ / निष्क्रिय रूप से सहायक शक्ति", अनन्त काल तक, जब तक कोई दूसरी शक्ति स्थिरता में बाधा नहीं डाले |

विज्ञान में यह "न्यूटन का गति का पहला नियम का दूसरा भाग" है |

मृत्यु के बाद, जीव एक गति से दूसरी गति में, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्य-शक्ति की सहायता से जाता है |

(5) **काल** = समय (Time)

(6) **आकाश** = जगह / स्थान (Space) जिसमें कुछ भर सकता है |

हर एक द्रव्य एक दूसरे से भिन्न है, अर्थात् 6 द्रव्य में, किसी भी 1 द्रव्य में ऐसे "विशिष्ट गुण" है, जो बाकी 5 द्रव्यों में नहीं है | 6 में से, हर एक द्रव्य की स्वतंत्र सत्ता है, अर्थात् एक दूसरे पर निर्भर नहीं है, और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में परिवर्तित भी नहीं हो सकता |

6 द्रव्य को, मोटे रूप से 2 समूह में विभाजन :

"जीव" द्रव्य समूह = जिसमें चेतना है (Living being, having Consciousness) :
6 द्रव्य में से 1 द्रव्य "जीव द्रव्य समूह" है |

"अजीव" द्रव्य समूह = जिसमें चेतना नहीं है = जड़ (Non-living being, without consciousness) = 6 द्रव्य में से आत्मा के सिवाय बाकी 5 द्रव्य अजीव द्रव्य समूह है |

"जीव" समूह 2 प्रकार के माने गये हैं |

(1) **सिद्ध जीव** केवल "आत्मा है = मोक्ष आत्मा = मुक्त आत्मा :
= शरीर - 5 इन्द्रिय, मन, बुद्धि, 10 प्राण आदि रहित
लेकिन सर्वोच्च "भाव प्राण" - ज्ञान, दर्शन आदि सहित
= कर्म रहित

6 द्रव्य में से 1 द्रव्य "जीव समूह" केवल "सिद्ध जीवों का समूह" है | चौदहवें गुणस्थान (14) के अंतिम समय में, जब संसारी जीव के सब कर्म (8) क्षय हो जाते हैं, तब शरीर के छूटते ही, जीव अपने "वास्तविक स्वरूप" अर्थात "केवल आत्मा" होता है | इस जीव को सिद्ध" कहते है, जो जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है |

(2) **संसारी जीव :**
= "शरीर रूप" जीव (Organism) = भौतिक शरीर + कर्म शरीर + आत्मा:
मृत्यु के बाद, निर्जीव शरीर यहीं रह जाता है और रूह (Soul) अर्थात् "आत्मा + कर्म शरीर" निकल कर, कर्म-स्थिति के अनुसार, रूह अन्य शरीर में प्रवेश कर जाती है |

(जैन दर्शन में जीव के स्वरूप का आध्यात्मिक विकास, कर्म की दृष्टि से, 14 क्रमिक श्रेणियों में दर्शाया गया | जीव के निकृष्टतम से सर्वश्रेष्ठ मुक्त स्वरूप तक की 14 श्रेणियों को "14 गुणस्थान" का नाम दिया)

नोट: 1. इस लेख में जहाँ **"जीव"** शब्द का प्रयोग हुआ है, उसे **"संसारी जीव"** ही समझे |
2. जहाँ **"आत्मा"** शब्द का प्रयोग हुआ है, उसे **"शरीर और कर्म रहित आत्मा"** समझे |
3. कहीं कहीं पर एक ही वाक्य को दोहराया गया है, किसी सन्दर्भ में स्पष्टीकरण के लिए |

जीव, रूह (जीवात्मा) और आत्मा :

जीव: जीव में एक सबसे महत्वपूर्ण गुण होता है "होमियोस्टेटिस" (Homeostatis), अर्थात जीव के बाहर कैसा भी वातावरण हो, स्वस्थ जीव अपने अन्दर, हजारों चीजों का संतुलन बनाए रखता है | जैसे शरीर का तापमान, रक्तचाप, कितने ही प्रकार के विटामिन, मिनरल - सोडियम, पोटेशियम, आयरन, कैल्शियम आदि का संतुलन बनाए रखना, बीमारी की अवस्था में स्व-प्रतिरोधक शक्ति से बीमारी को अपने आप ठीक कर, वापस स्वस्थ होने की प्रक्रिया आदि |

जीव के लक्षण हैं - जन्म, मरण और प्रजनन, जब तक जीव मुक्त अवस्था में नहीं आ जाय | जीव से ही जीव की उत्पत्ति होती है | वास्तव में मुक्त होना अर्थात अपने "सर्वोच प्राकृतिक स्वभाव" में आने की प्रवृत्ति का हर जन्म में रहना, "होमियोस्टेटिस" का ही उदहारण है |

जीव के शरीर में प्राण होते हैं - आत्मा की उपस्थितिके कारण : 5 इन्द्रिययुक्त मानव शरीर में 10 द्रव्य प्राण हैं (5 इन्द्रिय प्राण, 3 मन - वचन - काया बल प्राण, 1 श्वास और 1 आयुष्य प्राण) | जीव में कम से कम 4 प्राण होते हैं, जैसे 1 इन्द्रिय जीव के शरीर (पेड़ पौधे) में "4 प्राण हैं (आयुष्य, श्वास, काया और स्पर्श बल प्राण) |

जीव में ज्ञान, दर्शन (Perception) आदि "**भाव प्राण**" भी होते हैं |

जीव = जीव की **आत्मा** + जीव के **कर्म** + जीव का **शरीर** (**प्राण** # सहित) :

आत्मा 1 - अदृश्य अभौतिक शक्ति, जिसका फैलाव, स्थूल शरीर के फैलाव के बराबर होता है और स्थूल शरीर के साथ ही है |

कर्म 8 - पुद्गल / जड़ अदृश्य भौतिक अति-सूक्ष्म-परमाणु के रूप में, जिसका समूह कार्मण-शरीर कहलाता है | कार्मण-शरीर का फैलाव, स्थूल शरीर के फैलाव के बराबर होता है और स्थूल शरीर के साथ ही है |

शरीर - पुद्गल : 5 प्रकार के शरीर - स्थूल (औदारिक); तेजस (विद्युत-चुम्बकीय - प्रतिबिंबित आभा रूप); कार्मण (अति सूक्ष्म कर्म शरीर); वेक्रिय (सूक्ष्म शरीर- देव आदि का शरीर); आहारिक-शरीर धारक व्यक्ति अपना छोटा रूप बनाकर, ब्रह्माण्ड में यात्रा कर, अन्य जीव से मिलकर, वापस लौट सके | इन 5 में से कम से कम 3 शरीर (स्थूल + विद्युत-चुम्बकीय + कार्मण) तो किसी भी जीव में होते ही हैं |

जीव के स्थूल-भौतिक-शरीर के अति सूक्ष्म कणों के साथ **आत्मा** (अदृश्य अभौतिक शक्ति) पूरे शरीर में व्याप्त रहती है | आत्मा के ऊपर **कर्म** (पुद्गल-अदृश्य भौतिक शक्ति) के अति सूक्ष्म कणों का घना या हलका आवरण रहता है |

आत्मा (अभौतिक शक्ति) और **कर्म** (भौतिक अर्थात् पौद्गलिक शक्ति-कण) एक साथ रहते हैं, पर एक मेक होकर नहीं (As mixture – Not as compound) | आत्मा निर्लेप है - इसके कुछ भी चिपकता नहीं है | निज-आत्मा के निज-कर्म-कण चिपकते नहीं है, लेकिन आकर्षित रहते हैं, जैसे लोहा चुंबक से चुम्बकीय शक्ति के कारण आकर्षित रहता है | जीव की मृत्यु के पूर्व, आत्मा और शेष बंधित कर्म, दोनों नये जीव में वही रहते हैं |

कर्म आवरण की मामूली शक्ति :

आत्मा रूपी सूरज के ऊपर, कर्म आवरण बादल की तरह रहते हैं | जैसे एक मामूली बदली प्रचंड सूरज के प्रकाश और गरमी को आच्छादित कर देती है, इसी प्रकार अत्यन्त मामूली (आत्मा के मुकाबले)

कर्मो का आवरण, आत्मा के अनन्त शक्तिशाली आत्मा के ज्ञान-आनन्द-पराक्रम आदि गुणों को आच्छादित कर देता है |

जीव के प्रकार (जाति) :

विविध प्रकार से सांसारिक सुख दुःख अनुभव करने की और ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति के लिहाज से 5 प्रकार के जीव हैं - 1 इन्द्रिय से 5 इन्द्रिय तक (त्वचा, जीभ, नाक, आँख, कान इन्द्रियां वाले) | 1 इन्द्रिय वाले जीव (एकेन्द्रिय जीव) में केवल छूने के अंग (त्वचा) द्वारा छूने की शक्ति होती है अर्थात् उनको छूने से जीव को सुख दुःख का अनुभव होता है | इसके आगे विकास की श्रेणी में 2 इन्द्रिय जीव में छूने और चखने के अंगों द्वारा छूने और चखने की शक्तियां होती हैं और इनको सुख दुःख का अनुभव 2 इंद्रियों द्वारा होता है | इसी प्रकार आगे 5 इन्द्रिय वाले जीव (पंचेन्द्रिय जीव) में छूने, चखने, सूंघने, देखने और सुनने के अंगों द्वारा छूने, चखने, सूंघने, देखने और सुनने की शक्तियां होती है और इनको सुख दुःख का अनुभव 5 इंद्रियों द्वारा होता है |

मन-सहित पंचेन्द्रिय जीवों को "**संज्ञी**" कहते हैं और मन-रहित को "**असंज्ञी**" | केवल मन से भी जीव सुख दुःख का अनुभव कर सकता है और ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है |

जीव के उदाहरण :

पंचेन्द्रिय जीव : मछली, चिकन, सर्प, अन्य पशु (कुत्ता, बिल्ली, गाय आदि), पक्षी, देव, मानव आदि **:** मानव में ही आत्मा का ज्ञान प्रकट होना संभव है |

चतुरिंद्रिय जीव : मच्छर, मक्खी, कसारी, बिच्छू आदि **:**

त्रिन्द्रिय जीव : कीड़ी, मकोड़ा, जूं, खटमल आदि **:**

बेंद्रिय जीव : लट, कृमि, घुन आदि **:**

एकेन्द्रिय जीव : घास; पेड़-पौधे, बीज, पत्ते, फल, छाल, लकड़ी; पशु-पक्षी-मानव के अंडे, शुक्राणु आदि : एकेन्द्रिय जीव के केवल 1 ही इन्द्रिय होती है, तथापि शक्ति के लिहाज से, अधिक इन्द्रिय-शक्ति सम्भव है | कितने ही वैज्ञानिक प्रयोगों से यह साबित हो चुका है कि 1 इन्द्रिय वाले जीव जैसे पौधों में बाकी 4 इन्द्रियें नहीं होने पर भी 4 इन्द्रियों की शक्ति होती है | 2 पोधों को एक ही वातावरण में रख कर, एक पोधे को अच्छा संगीत सुनाया और उसे छुआ भी नहीं और दूसरे पौधे को प्रति दिन फटकारा और प्रति दिन छुआ भी | कुछ दिनों बाद यह पाया गया कि पहले वाले पौधे का विकास, दूसरे वाले पौधे के मुकाबले बहुत अच्छा हुआ|

इसके अलावा यह भी पाया गया कि कुछ पौधे एक दूसरे से संचार भी करते हैं | अगर एक पौधे पर बैक्टीरियल हमला हुआ तो वह पड़ोसी पौधे को सूचित कर देता है ताकि वो सावधान होकर ऐसी गंध छोड़े ताकि बैक्टेरिया उस पर हमला नहीं कर सके |

एक से पांच इंद्रियों की शक्तियों की अभिव्यक्ति, **आत्म-शक्ति** से होती है |

"आत्मा" की शक्ति के स्वतः उपयोग से "जीव" में सब कुछ हो पारहा है :

जीव की 84 लाख **उपजाति** (Species) में से किसी भी एक **"जीव"** के **"बीज"** में **"4 अघाति कर्मों"** (गोत्र + नाम + वेदनीय + आयुष्य) में से "**3 अघाति कर्मों**" (नाम + वेदनीय + आयुष्य) के अनुसार DNA होता है | अंकुरित बीज (सचित) में जीव का DNA अभिव्यक्त होना शुरू हो जाता है, "आत्मा" की शक्ति का स्वतः उपयोग करते हुये | लेकिन सूखा बीज भी **"सचित"** अर्थात् जीव है | **"अचित"** के उदाहरण है सोना, लोहा, ऑक्सीजन आदि, जिसमें DNA नहीं है |

सूखे गेहूँ के दाने (बीज) के एक भाग में गेहूं का भ्रूण (Embryo) होता है | इसे वीट जर्म कहते हैं - इसमें गेहूं का DNA होता है | DNA आंख से दिखता नहीं है | DNA के विस्तृत कोड में जीव के शरीर के रंग रूप, अंगों की बनावट एवं उनकी क्षमता और भविष्य में होने वाली "वेदनीय कर्म सम्बंधित बीमारियों का "ले**खा** जोखा" रहता है | मानव के औसतन शरीर में करीब 700 खरब (700,00,000,000,000) कोशिकाएं हैं और औसतन 7 लाख (7,00,000) कोशिकाएं प्रति सेकंड ख़ारिज होती है और नई बनती है | मानव के शरीर की हर 1 कोशिका (CELL) में (सिवाय लाल खून की कोशिका में) 1 DNA होता है | 1 DNA में 46 क्रोमोजोम (Chromosomes) अर्थात 23 क्रोमोजोम के जोड़े (pairs होते हैं जो करीब 25,000 genes में बटे होते हैं | मानव की 1 कोशिका के अन्दर 1 DNA में करीब 6 अरब (6,000,000,000) बेस पेयर (Base-Pairs) होते हैं, जो केवल 4 रसायन (Chemicals) A T C G के अनुक्रम (Sequence) से बने होते हैं | अपना शरीर एक बहुत बड़ा "जैविक कारखाना" है | मानव के जन्म के समय, मानव की केवल 1 कोशिका से जटिल शरीर और मन का इतना बड़ा कारखाने का निर्माण और आगे शरीर का विकास, DNA तय करता है कि शरीर में कब क्या और कैसे करना है, यह सब संभव होता है, **आत्म शक्ति** के **स्वतः उपयोग** से |

जीव के शरीर का विकास - शरीर के अंग, तंत्र, इन्द्रिय, मस्तिष्क, के निर्माण, संचालन, रख-रखाव एवं बुद्धि साधारण या रचनात्मक या सृजनात्मक सोच के लिए और किसी क्रिया, प्रतिक्रिया, आदि सब "**आत्मा**" **की शक्ति के स्वतः उपयोग**" से हो पारहे हैं | इसके अलावा इच्छाशक्ति (will power) से इच्छा पूर्ति के लिए, गहन ज्ञान प्राप्ति के लिए, आत्म-पुरुषार्थ आदि के लिए, "अनेक प्रकार की रचनात्मक शक्ति" की आवश्यकता होती है, जो स्वतः आत्मा से उपलब्ध होती है |

अगर जीव केवल "आत्म-स्वरूप" में रहे, तब अपेक्षित-शक्ति प्राप्त करने की सीमा नहीं है |

कर्म :

मन या वचन या शरीर - इन 3 में से किसी 1 या अधिक माध्यम से, "**जाने अनजाने**" में, कोई "**क्रिया**" करना या करवाना या अनुमोदन करना - इन 3 में से किसी 1 या अधिक प्रकार के "**कर्म**" है | ऐसे "कर्म" अगर "**राग-युक्त**" है, तो "**कर्म का बंधन**" हो जाता है |

"स्वचालित क्रिया" जैसे श्वास का स्वतः चलना "कर्म नहीं है", लेकिन प्राणायाम से श्वास को संचालित करने की क्रिया "कर्म है" | कर्म के पूर्व, शुभ या अशुभ भाव रहते हैं और इससे सम्बंधित "राग-द्वेष" की तीव्रता या मंदता के प्रभाव से की गयी क्रिया **"द्रव्य कर्म"** है |

केवल "**शुभ अशुभ भाव**" के रूप में, अपने मन में, भावना रहना **"भाव कर्म"** है, जो हमारी "मनोवृत्ति" के रूप में रहते हैं | **अच्छे बुरे भाव - अचानक या संचित भाव कर्म में से प्रकट होकर,** अक्सर क्रिया का रूप लेलेते हैं, तब "**द्रव्य कर्म**" बंध जाता है | लेकिन ऐसा भी सम्भव है कि अचानक कोई भाव आते ही "**सहज पुरुषार्थ**" से समाप्त होजाय, तब "**कर्म बंध नहीं**" होता है |

"कर्म फल" भोगने के लिए, उचित समय पर, अपने अन्दर और बाहर परिस्थितियाँ प्रस्तुत होती है | कर्म फल भोगते समय अगर हमने, "जाने अनजाने" में, अज्ञानवश "**राग-युक्त-प्रतिक्रिया**" कर दी, तब "**नये कर्म**" का **बंधन** होता है, जो "**भव-भ्रमण**" कराता है और हर भव में जीव को दुखी करता है |

"**राग द्वेष रहित समभाव**" से, "**विवेक**" से बहुत कम कर्म ऐसे हो सकते हैं, जिससे कर्म बंध नहीं हो, जैसे नियमित कार्यक्रम के अन्तर्गत "**स्वार्थ और राग रहित आत्म-धर्म सम्बंधित उपदेश या प्रश्नोत्तर**", जिसे **"अकर्म"** भी कहते हैं | उदाहरनार्थ केवलज्ञानी के प्रवचन से केवलज्ञानी के कर्म-बंध नहीं होता है |

8 कर्म का सार - आत्मा सम्बंधित :

आत्मा के 8 गुणों पर आवरण डालने वाले 8 कर्म हैं - 4 घाती कर्म + 4 अघाती कर्म |

4 घाती कर्म :

घाती कर्म, अति सूक्ष्म कर्म-मल परमाणु, आवरण के रूप में, आत्मा को अच्छादित कर देते हैं और अपने "आत्म-स्वरूप" को उसके स्वाभाविक गुणों के साथ प्रकट नहीं होने देते | अर्थात निम्न कर्मों से आत्मा के स्वाभाविक गुणों का घात होता है | इसलिए निम्न 4 कर्मों को "घाती" कर्म माना है | कर्म आवरण की परत हलकी अथवा घनी के अनुसार, आत्मा को समझना सरल अथवा कठिन होगा |

(1) **ज्ञानावरणीय कर्म :** आत्मा का पहला गुण है "**केवलज्ञान**" (**पूर्ण आत्म-ज्ञान**) अर्थात् "अपने स्वाभाविक / प्राकृतिक स्वरूप" (स्व-आत्मा) का "ज्ञान" | केवलज्ञान पर आवरण डालने वाले परमाणुओं का नाम है - "ज्ञानावरणीय कर्म" | इस कर्म का पूर्ण क्षय होने पर, "आत्मा का सर्वज्ञ सर्वदर्शी रूप" प्रकट होता है | ज्ञानावरणीय कर्म के कारण, हम "अपने आप" के "वास्तविक और स्थायी" स्वरूप को पूर्णतया समझ नहीं पाने से, अपने शरीर, मन, बुद्धि, नाम, पद, प्रतिष्ठा आदि "पर" को "अपना" समझते हैं |

(2) **दर्शनावरणीय कर्म :** आत्मा का दूसरा गुण है "**केवल दर्शन**" (अनन्त आत्म-दर्शन) अर्थात् "अपनी स्वाभाविक / वास्तविक स्वरूप" के "दर्शन" (Perception) | इसको रोकने वाले परमाणुओं का नाम है - "दर्शनावरणीय कर्म" | "आत्मा के स्वरूप और गुणों" का सैद्धांतिक ज्ञान तो हो सकता है, लेकिन जब तक "स्व-आत्मा" का दर्शन नहीं कर पाते अर्थात् आत्मा का अहसास" नहीं कर पाते, तब तक आत्मा का बोध नहीं हो पाता है और **आत्म-जागृति** नहीं हो पाती है | अगर "आत्म-जागृति" हो भी जाय तो निरंतर नहीं रह पाती है | अतः "**आत्म-अनुभूति**" भी नहीं हो पाती है |

(3) **मोहनीय कर्म :** आत्मा का तीसरा गुण है "**अनन्त अतीन्द्रिय आत्मीय सुख**", अर्थात् मन और इंद्रियों की सहायता के बिना परम आनन्द की प्राप्ति | इस प्राप्ति को रोकने वाले परमाणुओं का नाम है "मोहनीय कर्म" | मोहनीय कर्म के प्रभाव से आत्मा के प्रति "**सम्यक-श्रद्धा**" नहीं हो पाती | "सम्यक-श्रद्धा" प्रारम्भ होने पर, सब प्रकार के मोह का छूटना प्रारम्भ हो जाता है | मोह का पूर्ण क्षय होने पर, जीव की "वीतराग दशा" में, "आत्मा" के प्रति "पूर्ण श्रद्धा" हो जाती है, तब तुरन्त परम आनन्द, अनुपम सुख प्राप्त होता है | मोहनीय कर्म मुख्यतया 2 प्रकार के हैं |

(i) **दर्शन मोहनीय कर्म :** यह कर्म भ्रम पैदा करता है | उपर्युक्त वर्णित 6 तत्व (द्रव्य) के बारे में "सही संतुलित श्रद्धा" नहीं होती है अथवा विपरीत या असंतुलित श्रद्धा होती है |
इसके कई उदाहरण है - यह मानना कि, "आत्मा" कुछ भी नहीं है अथवा कुछ भी काम की नहीं है और देवी-देवता, तंत्र-मंत्र, टोटके, धन सम्पति, नाम आदि उपयोगी है | इसके अलावा यह मानना कि "मैं" ज्ञानी, धनी, दानी, धार्मिक, साधु, प्रभावशाली, शक्तिशाली, बुद्धिमान, सरल, चालाक, इंजीनियर, डॉक्टर, सफल व्यवसायी, सम्मानित, सुन्दर आदि हूँ | "मेरे" इतने आश्रम है, "मेरे" इतने अनुयायी है | "मेरा" इतना आदर सम्मान होता है | फलां रिश्ते नाते, मित्र आदि "मेरे" हैं और "मैं" उनका हूँ | "मेरे" कर्म हैं | हम ऐसी "राग युक्त मान्यताओं" और "**मैं**", "**मेरी**", "**मेरा**" आदि "**पर**" में सुख ढूंढते है, जो मोहित कर फंसाता है |

(ii) **चारित्र मोहनीय कर्म :** इच्छायें, मनोवृत्ति और सामाजिक स्टेटस के प्रति "आसक्ति" के कारण, कितने ही प्रकार के लोभ, मान, माया और क्रोध "कषाय" में मानव डूबा रहता है |

पैसा, पदवी, प्रतिष्ठा, संग्रह, रति-अरति, अभिमान, झूठ-छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, नफरत, पुरुष-स्त्री आकर्षण, विकर्षण, हंसी मजाक, मनोरंजन और इन्द्रिय-विषय भोग में अटक जाता है | आलस और लापरवाही अर्थात् "प्रमाद" भी हावी हो जाता है | इन सब के कारण "आत्मा" को भूल जाता है | इन सब में "शारीरिक और सांसारिक सुख का अनुभव" ही "अपना अनुभव" कराता है | "आत्मीय सुख" का अनुभव नहीं होने देता |

(4) **अन्तराय कर्म :** आत्मा का चौथा गुण है "**अनन्त शक्ति**" | आत्मा का अनन्त सामर्थ्य प्रकट होने में, "बाहर से बाधा" डालने वाले परमाणुओं का नाम है - अन्तराय कर्म | इसके कारण जो हम चाहते हैं, कर नहीं पाते | जिसको हमने अपना माना, वो ही बाधा डालते है और "आत्म-पुरुषार्थ" के लिए यथोचित सामर्थ्य / बल नहीं पाता | इस कमी के कारण "आत्म जागृति" और "आत्म-अनुभूति" नहीं हो पाती | पवित्रता और आसक्ति-रहित-करुणा भाव और समर्पण भाव का पुरुषार्थ करने पर, अन्तराय कर्म का प्रभाव घटते रहने से "आत्म-साधना" की तरफ कदम बढ़ सकता है |

4 अघाती कर्म :

4 अघाति अघाती कर्म करीब करीब स्थिर कर्म है | इनका आत्मा से सीधा सम्बन्ध नहीं है, लेकिन 4 अघाती कर्म परोक्ष रूप से "आत्म-साधना" में बाधा डाल सकते हैं |

(5) **वेदनीय कर्म :** आत्मा का पांचवां गुण है **"अव्याबाध"** अर्थात् स्वयं की शारीरिक और मानसिक स्थिति, आत्म साधना में बाधा उत्पन्न नहीं करे | अपने स्वयं के शारीरिक और मानसिक दुःख और सुख रूप वेदना का अनुभव कराने वाले परमाणुओं का नाम है - असातावेद्नीय कर्म और सातावेद्नीय कर्म | **शरीर** और **मन** को "**पर**" समझने से, ऐसे वेदनीय कर्म हलके होने लगते है, तब "आत्म-साधना" की शुरुआत हो जाती है |

(6) **गोत्र कर्म :** आत्मा का छठा गुण है "**अगुरुलघुपन**" (न बड़ापन न छोटापन) | इसको रोकने वाले परमाणुओं का नाम है, गोत्र कर्म | प्रायः गोत्र कर्म के अनुसार ऊँचे या नीचे कुल में जन्म लेते हैं | यह कर्म तय करता है कि आम जनता हमें कितने आदर या तिरस्कार दृष्टि से देखती है | वास्तविकता कुछ और होती है | आत्मा की दृष्टि से, मेरे सहित सब जीवों में (एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय) में आत्माएं समान है - न कोई ऊँची न कोई निची अथवा न कोई बड़ी न कोई छोटी |

(7) **नाम कर्म :** आत्मा का सातवां गुण है "**अमूर्तिकपन**" (Formless) है, इसलिए इंद्रियों, मन और बुद्धि से अनुभव नहीं किया जा सकता | आत्मा "अमूर्त" है | इसको रोकने वाले परमाणुओं का नाम है - नाम कर्म, जो "मूर्तपन" दर्शाता है | इस कर्म के अनुसार जीव के अनेक प्रकार के "शरीर और अंग" होते हैं | मूर्तपन होना, अमूर्तपन में बाधक है |

किसी का "यश और अपयश" होना भी नाम कर्म का फल है |

(8) **आयुष्य कर्म :** आत्मा का आठवां गुण है "**अवगाहन**" | इसको रोकने वाले परमाणुओं का नाम है, आयुष्य कर्म | इसके कारण आत्मा जीव में, एक निश्चित आयु की अवधि तक रहती है |

अतः अभी से बाकी मानव जीवन के रहते, आत्म-साधना कर, अधिकतम संभव कर्म क्षय करते हुये, अंत में आयुष्य कर्म का क्षय कर, अपने वास्तविक आत्म-स्वभाव अर्थात् शुद्ध-आत्मा में होना है | आयुष्य कर्म रहित आत्मा को "सिद्ध" कहते हैं, जो केवल "अदृश्य अभौतिक शक्ति / ज्योति पुंज" है (शरीर नहीं) | जैन एवं अन्य भारतीय दर्शन के के अनुसार कर्म रहित शुद्ध आत्मा (सिद्ध) का आकार, फैलाव अलग अलग माना गया है |

जब जीव के आठों कर्म क्षय हो जाते हैं (आखिर में आयुष्य कर्म), तब "शुद्ध आत्म-स्वरूप / सिद्ध स्वरूप" प्रकट हो जाता है और शाश्वत आनन्द प्राप्त होता है और जन्म मरण के फंदे से छूट जाते हैं |

रूह = **जीवात्मा** (SOUL) = जीव की आत्मा + कार्मण शरीर (जीव के कर्म) **:**

रूह = जीव की पहचान - जन्म जन्मान्तर तक (Particular person's basic identity with updated Karma status, just after death & just before next birth) **:**

किसी भी जन्म में, मृत्यु के बाद और अगला जन्म लेने के पहले रूह निकल कर अन्य शरीर धारण करती है, लेकिन जीव की रूह (Soul) वही रहती है, मृत्यु के पहले और बाद में |

आत्मा = जीव शक्ति का स्रोत - चेतन :

आत्मा एक अदृश्य एवं अभौतिक शक्ति है, जो हर जीव में होती है |

आत्मा का लक्षण है **चेतना** (Consciousness / Awareness) जो हर जीव में होती है |

आत्मा = **"स्वयं" का वास्तविक और स्थायी शुद्ध स्वरूप"**, जो शरीर-मन-बुद्धि-कर्म रहित है | ऐसे स्वरूप में होने से, हम परम आनन्द की स्थिति का अनुभव कर सकते हैं (Awareness of Real-Self in Blissful / Ecstasy state) |

- आत्मा **अरुपी - अमूर्त**, रंग, रूप, रस, स्पर्श, गंध, ध्वनि, दिशा रहित है |
- आत्मा नर, नारी आदि नहीं है |
- आत्मा **अनादि, नित्य, सत्य** है |
  - आत्मा तीनो लोकों में, तीनों कालों में - अविनाशी एवं अपरिवर्तनशील है |
  - आत्मा का कोई शुरुआत और अंत नहीं है |
  - आत्मा निर्माण, उत्पत्ति, विनाश से परे है | आत्मा का जन्म और मृत्यु नहीं |
  - अग्नि, एटम बम्ब, शस्त्र आदि आत्मा का कुछ नहीं बिगाड़ सकते |
- आत्मा को इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से नहीं जान सकते |
- आत्मा को आत्मा से ही जान सकते हैं |
- सब जीवों में "समान गुणी" शुद्ध आत्मा" है |
- आत्मा अनन्त ज्ञान, शांति, अतीन्द्रिय-आनन्द, शक्ति, तृप्ति का भंडार है |
- ज्ञाता-दृष्टा है |
- अकर्ता-अभोक्ता है |

रूह / जीवात्मा / सोल (SOUL), **स्वयं** (SELF) **और आत्मा** (ATMA) **:**

1. कितने ही मत "आत्मा" और "रूह / जीवात्मा" के लिए अंग्रेज़ी भाषा का "SOUL" शब्द का प्रयोग करते है | "रूह / जीवात्मा" के लिए सोल (SOUL) शब्द का प्रयोग ठीक है | लेकिन "आत्मा" के लिए सोल (SOUL) शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है | हिंदी और संस्कृत भाषा में **"आत्मा"** के लिए कोई विरोधाभास नहीं है, **आत्मा** के लिए "आत्मा" या "आत्मन्" शब्द ही प्रयोग में आता है |
2. कहीं कहीं पर **"आत्मा"** और **"रूह / जीवात्मा"** और **"जीव"**, इन तीनो के लिए "**स्वयं**" "SELF" शब्द का प्रयोग करते हैं और आत्मा के लिए सोल "SOUL" शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो यथोचित संदर्भ के अनुसार **ठीक** है, लेकिन स्पष्ट-समझ के लिए भ्रांतिकारक है |

आत्मा विज्ञान की पहुँच के परे :

आत्मा एक अभौतिक शक्ति है | अतः आत्मा के अस्तित्व के बारे में वैज्ञानिक प्रमाण संभव नहीं है |

भौतिक प्रयोगशाला में केवल भौतिक प्रकरणों से, केवल भौतिक वस्तु या भौतिक शक्ति को ही जाना जा सकता है | भौतिक प्रकरणों से आत्मा, जो भौतिक तत्व नहीं है, उसे वैज्ञानिक अनुसन्धान से नहीं जान सकते | आत्मा को, आत्मा से ही जानकर, स्वयं केवल निज-आत्म स्वरूप में होने पर ही, आत्मा के अनन्त आनन्दमय, शांतिमय और शक्तिवान स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है |

आत्मा से ही सब शक्ति मिलती है :

हमारे जीवित शरीर के भीतर, हर सेकंड, स्वतः अरबों कार्य हो रहे है, बिना किसी हस्तक्षेप के | इसके अलावा बाहर, हम जो क्रियाएं करते है - चलना फिरना, इन्द्रियों के कार्य, सोचना, मनन करना, आत्म पुरुषार्थ आदि - सब के लिए शक्ति, आत्मा से ही स्वतः या मांग पर (on demand) प्राप्त होती है |

इसका एक **उदाहरण :** हम सोचते हैं कि "आंखे" देखती है | देखने के लिए आंख की मशीनरी और मस्तिष्क आदि की आवश्यकता है, लेकिन वास्तव में देखने की शक्ति इनमें नहीं हैं | देखने की शक्ति आत्मा से आती है | मृत शरीर में आंख की मशीनरी अच्छी होने पर भी, मृत शरीर देख नहीं सकता | मृत्यु के 4 से 6 घंटे बाद तक, मृत शरीर से आंख निकाल कर, किसी जीवित अंधे व्यक्ति में ट्रांसप्लांट कर दे, तो उसे दिखाई देने लग जायेगा, अगर उसका अंधापन कोरनिया से हो | इससे यह प्रमाणित होता है कि, जिस अंधे व्यक्ति में आंख का ट्रांसप्लांट किया, उस व्यक्ति में आत्मा है, इसलिए दिखने लग गया |

आत्मा से - जितनी शक्ति चाहिए - उतनी शक्ति मिल जाती है :

सूरज कुछ करता नही है | वह अपने स्थान पर स्थित है, पृथ्वी की सापेक्षिक दृष्टि से | उसमें बहुत उष्णता है | यदि गरमी लेने का मन करे तो हम सूरज के सामने आजाएं, तो गरमी मिल जायेगी | लेकिन अगर जीवन भर, हम अपने कमरे में बंद रहें, तो सूरज से गरमी नहीं मिलेगी | हम सूरज के जितने पास, उतनी अधिक गरमी हमें मिलेगी | इसी प्रकार आत्मा के अनन्त ज्ञान, शक्ति आदि का अहसास करने के लिए, हम आत्मा के जितने पास (आत्म-जागृति से आत्म-अनुभूति तक) होंगे, उतनी ही आत्मा की शक्ति हमें मिलेगी |

इसे इस तरह से भी समझा जा सकता है कि घर के एक कमरे में 5 वाट के पावर का बल्ब लगा हुआ है और दूसरे कमरे में 1000 वाट के पावर का बल्ब लगा हुआ है | दोनों कमरों में दोनों बल्ब, बिजली के तार से जुड़े हैं | बिजली के पावर की आपूर्ति-क्षमता, 220 वोल्ट दोनों बल्ब के लिए बराबर है, फिर भी एक कमरा बहुत कम प्रकाशित होगा और दूसरा कमरा बहुत अधिक प्रकाशित होगा, अलग अलग पावर के बल्ब की क्षमता और मांग / आवश्यकता के अनुसार | इसी प्रकार "**आत्मा की अनन्त ज्ञान शक्ति का प्रकाश**", हम सब के लिए बराबर होते हुए भी, अपनी आत्मा के प्रति "**श्रद्धा के पावर**" और "**मांग की प्राथमिकता की तीव्रता**" के अनुसार ही, आत्मा के ज्ञान का **प्रकाश**, कम या अधिक प्रकट होगा, अपने कर्म के घने अथवा हलके आवरण को चीरता हुआ |

लेकिन अगर हमें सूरज के "स्वरूप" का "पूर्ण अनुभव" करना है तो, हमें सूरज ही बनना पड़ेगा, तब यह हमारा शरीर, वास्तव में "**पूरा-मैं**" नहीं रहेगा - पूरा सूरज ही होगा | इसी प्रकार **आत्मा** के "**स्वरूप**" का "**आत्मा के अनन्त गुणों**" के साथ, अनुभव करने के लिए, हमारा "**पूरा मैं**" का छुटना होता है | शरीर रहते हुए, "**मैं**" को शरीर से अलग "**स्व-प्रकट-अनुभव**" करना, कुछ हद तक संभव है, लेकिन "**पूर्ण मैं**" का छुटना, इस बाकी युग में - इस संसार में नहीं हो सकता | लोक के अन्य क्षेत्र में मानव जन्म लेने पर संभव है | "आत्मा" अनन्त काल (अतीत, वर्तमान, भविष्य) तक, जीव जिस दशा (संसारी या मुक्त) में रहे, उसके अस्तित्व की आवश्यकता अनुसार, अपेक्षित शक्ति उपलब्ध कराती है |

आत्मा "अकर्ता" और "अभोक्ता" :

हम अगर सोचे कि 3 तरह की ऊर्जा - "प्रकाश" बल्ब से, "ठंडक" कूलर से और "गरमी" हीटर से आती है, तो यह ऊपरी दृष्टि से ठीक प्रतीत होता है, लेकिन भ्रम है | इन तीनो में ऊर्जा का स्रोत 1 ही है - 220 वोल्ट पावर की स्थिर बिजली सप्लाई | इस स्थिर पावर सप्लाई से अलग अलग प्रकार के उपकरण की क्षमता अथवा मांग/आवश्यकता के अनुसार, बिजली की शक्ति का प्रवाह - करंट होता है | इसी प्रकार शरीर में 10 प्राणों तक का, जीव के जन्म के समय स्थापन और बाद में संचालन के लिए आत्मा से, आवश्यकता के अनुसार शक्ति प्राप्त होती है | इन्द्रिय, मन, बुद्धि और विवेक से कितने ही कार्यों के लिए शक्ति आत्मा से ही आती है, अपनी दिलचस्पी और प्राथमिकता के स्तर के अनुसार आत्मा से ही स्वतः उपलब्ध होती है | यहां 2 प्रश्न उठते है :

पहला प्रश्न - यदि आत्मा "अकर्ता" है तो उसने शक्ति सप्लाई का काम क्यों किया ? जैसे सूरज गरमी की सप्लाई के मामलें में "अकर्ता" है - सूरज कुछ करता नहीं है | जितनी गरमी चाहिए, उसके पास या दूर आ जाना है, मिल जायेगी | ऐसे ही आत्मा कुछ करती नहीं है, अनन्त शक्तिमान है | आत्मा से साक्षात्कार तो मूल रूप से है ही | अतः अपनी सोच के अनुसार, स्वतः अपेक्षित शक्ति मिल जाती है | शरीर की क्रियायें (श्वास, पाचन, खून का संचार आदि) स्वतः हो रहा है, इसके लिए आत्मा का स्वतः साक्षात्कार है |

दूसरा प्रश्न - आत्मा शक्ति देती रहती है, तो आत्मा की शक्ति भी व्यय होती रहती होगी | गणित के सिद्धांत से "अनन्त" से "अनन्त" निकालो या "अनन्त" जोड़ो तो बाकी "अनन्त" ही रहेगा | बृहदारण्यक उपनिषद् में भी इसी सिद्धांत का ऐसा ही वर्णन है |

जहाँ तक "अभोक्ता" का प्रश्न है - जब आत्मा "अकर्ता" है तो भोगने का काम नहीं कर सकती | अतः आत्मा "भोक्ता" हो ही नहीं सकती |

दृष्टा (ज्ञाता-दृष्टा) भाव, साक्षी भाव और आत्म-भाव :

"**दृष्टा भाव**" को "**ज्ञाता-दृष्टा भाव**" भी कहतें है क्योंकि दृष्टा को, जो दृश्य दिखा उसका पूरा भान और ज्ञान है | **साक्षी भाव** एक तरह का श्रेष्ठ "**ध्यान**" है | स्वयं और स्वयं की भावना, मन, वाणी, कार्य और अन्य व्यक्ति, वस्तु आदि सब को तटस्थ भाव से देखना या किसी देखने वाले को भी देखना साक्षी भाव है |

दृष्टा भाव और साक्षी भाव में ऊपरी समझ से कोई अंतर नहीं है | सर्व प्रथम दोनों में दृश्य के प्रति पूर्ण जागरूकता (Full-Awareness) रहती है और दोनों में 2 की उपस्थिति रहती है - देखनेवाला "दृष्टा" या साक्षी और दृश्य | लेकिन साक्षी भाव में अन्य सब को देखते समय, स्वयं को भी देखता है | साक्षी भाव में विचार और विचारक एक हो जाते हैं |

दोनों भाव में चित्त "दृष्टा" और "दृश्य" में विभाजित रहता है |

"**आत्म-भाव**" में कोई भी दृश्य दिखते समय स्वयं की आत्मा और उसकी अनन्त शक्ति भी दिखती है, चाहे वो दृष्टा भाव हो या साक्षी भाव हो |

एक प्रकार के आत्म भाव में, "**आत्म-जागृति**" की स्थिति है, जिसमें 2 की उपस्थिति रहती है -"दृष्टा" या "साक्षी" और दृश्य |

दूसरे प्रकार के आत्म भाव में, "**आत्म-अनुभूति**" की स्थिति है, जिसमें 1 की ही उपस्थिति रहती है - केवल आत्मा की - शरीर, मन, बुद्धि और कर्म रहित |

"आत्म अनुभूति" के समय "आत्मभाव" में "**समग्र जागरूकता**" और "**सर्वज्ञ दशा**" रहती है | ऐसे आत्म-भाव में देखना नहीं पड़ता - दिख जाता है |

साधारण दृष्टा भाव का अर्थ है - आत्मा की जागृति के बिना "देख लिया, जान लिया" लेकिन "अच्छा-बुरा नहीं माना" और "रागवश-प्रतिक्रिया नहीं" की | अगर प्रतिक्रिया की भी तो निस्वार्थ भाव और विवेक से | दृश्य तो बदलते रहते है, लेकिन दृष्टा भाव में दृश्य में उलझते नहीं है, अतः कितनी ही समस्याओं से बच जाते हैं और बाकी से आत्मीय प्रेम + निस्वार्थ सेवा भाव से निपट लेते है |

दृष्टा भाव और साक्षी भाव से उपझी समझ ऐसे काम करती है जैसे सब समस्याओं के अंगारे, दृष्टा भाव और साक्षी भाव के अथाह पानी में डालते ही बुझ गये | मूड ऑफ, निराशा, चिड़चिड़ाहट, गुस्सा, आदि तुरन्त शान्त हो जाते हैं | सब प्रकार के टकराव व कर्म-बंध से बच जाते हैं |

दृष्टा भाव और साक्षी भाव, आत्म-जागृति की निरंतरता होने में सहायक है |

आत्मा का सर्वोच्च स्तर पर "ज्ञाता - दृष्टा" स्वरूप :

जैसे दर्पण, बिना राग-द्वेष के, एक "वीतरागी" की तरह, उसके जो सामने होता है, वह उसका सही प्रतिबिम्ब प्रदर्शित कर देता है | इस प्रकार **शुद्ध आत्मा** (कर्म आवरण रहित) **केवलज्ञानी** और **वीतरागी होने से, तीनों लोकों में,** सब कुछ दिख जाता है - जीव और अजीव, बाहर से दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह और अन्दर से X-RAY की तस्वीर की तरह, बिना परिश्रम के |

"शुद्ध-आत्मा" को सब कुछ "सहजता से दिखता है, देखना नहीं पड़ता" | देखने की क्रिया और स्वतः दिखने में अंतर है | आत्मा "अकर्ता" होने से, कुछ भी अच्छी बुरी क्रिया अथवा प्रतिक्रया नहीं करती है - इस दृष्टिकोण से आत्मा में दृष्टा भाव है | आत्मा में अनन्त ज्ञान है - इस दृष्टी से आत्मा का "ज्ञाता (सब जाननेवाला) स्वरूप" भी है | "शुद्ध-आत्मा" केवल "आत्मा" ही है, उसे स्वयं को देखने की आवश्यकता नहीं है | पानी पानी है - पानी को यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि वो पानी है | जीव-शरीर को यह देखने की आवश्यकता है कि उसमें पानी है | जीव-शरीर को अपने आप नहीं दिखता है कि उसमें पानी है अथवा उसमें आत्मा है |

मेरे शरीर में आत्मा कहाँ है ?

मेरी निज आत्मा, मेरे शरीर के अति सूक्ष्म कणों के "**साथ**", शरीर के छोर तक - व्याप्त है | जैसे पानी से भीगे हुये स्पंज में "आत्मा" रूप "पानी" स्पंज के अन्दर और बाहर स्पंज के छोर तक विद्यमान है, लेकिन स्पंज के सूक्ष्म कणों के भीतर पानी विद्यमान नहीं है | लेकिन अदृश्य अभौतिक आत्मा की अनन्त शक्ति स्वतः शरीर के अति सूक्ष्म कणों को भी प्रकाशित करती है |

आत्मा को कैसे जाने ?

आत्मा को केवल आत्मा से ही जाना जा सकता है, आत्म-पुरुषार्थ से | **आत्म-पुरुषार्थ** से पहले आत्मा का स्वरूप और उसकी शक्ति, ज्ञान-गुण आदि जाना जाता है | उसके बाद "**आत्मा**" और "**उसके अनन्त शक्ति, अनन्त सुख आदि गुणों**" में निशंकित श्रद्धा होती है | तब "**आत्म-जागृति**" से दृष्टा भाव और साक्षी भाव में रहकर, आत्मा की शक्ति का उपयोग कर, आत्मीय प्रेम से सब सांसारिक समस्याओं को शांतिपूर्वक निपटाया जाता है | शास्त्र पठन, सन्तों के प्रवचन सुनने से आत्मा के बारे में सैद्धांतिक ज्ञान हो सकता है | लेकिन आत्मा का असल ज्ञान (आत्म ज्ञान) तो "**आत्म पुरुषार्थ**" से ही, आत्मा के द्वारा, आत्मा के उपयोग से "**आत्म-जागृति**" और "**आत्म-अनुभूति**" से ही होगा |

सुख दुःख का अनुभव कौन करता है ?

आत्मा : अकर्ता और अभोक्ता है, अतः सुख दुःख का अनुभव नहीं कर सकती |

शरीर : पुदगल है | पुद्गल अर्थात् जड़ में जानने, देखने, अनुभव करने की शक्ति नहीं है, अतः अकेला शरीर (मन, बुद्धि सहित) सुख दुःख का अनुभव नहीं कर सकता |

कर्म : कर्म भी पुदगल है, अतः अकेले कर्म भी सुख दुःख का अनुभव नहीं करा सकते |

लेकिन जब जीव के रूप में, इन तीनों का (आत्मा, शरीर, कर्म) "**संयोग**" होता है और मन में भी "**रागादि का संयोग**" हो, तब "**कर्म-फल**" जीव को "**सुख दुःख का अनुभव**" कराता है और **आत्मा स्वतः मन के द्वारा** इसके लिए **अपेक्षित शक्ति प्रदान करती है** |

> प्रति दिन, कई बार, पूर्व कर्म का फल भोगने के लिए परिस्थितियां प्रस्तुत होती हैं, तब रागादि के कारण, मन और शरीर प्रभावित होते है और दुःख या भ्रामक सुख की तरंगो का प्रवाह शुरू होता है | तब अज्ञानवश क्रिया / प्रतिक्रिया करने पर, नये कर्म बंधते हैं | फिर वही दुःख एवं भ्रामक सुख भोगने का सिलसिला जारी रहता है, जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं हो जाय |

दुःख-दर्द - वेदना, वेदन, और आत्मा :

साधारणतया कहा जाता है कि "मेरे हाथ में "दर्द" है अर्थात् "वेदना" है | "**वेदना**" का अहसास **"वेदन"** है | हर व्यक्ति में उसी दर्द का "अहसास" अर्थात् वेदना से वेदन बहुत कम अथवा बहुत अधिक हो सकता है | लेकिन अगर हम "**आत्मा के स्वरूप**" में स्थित हैं, तब "शुद्ध आत्मा" में वेदना का अहसास नहीं है, तो **"वेदन"** भी नहीं है | इसे हम निम्न "**आत्म-स्वभाव**" द्वारा समझ सकते है |

- जब हाथ को "मेरा" समझा तब "मेरा दर्द" अर्थात् "मेरी वेदना" "मुझ-जीव को हुई" और मुझ जीव को "वेदना का अहसास" अर्थात् मुझ जीव का "वेदन" हुआ |
- लेकिन "**आत्म-स्वरूप में स्थित होने पर**", बाहर कोई "**मेरा कुछ भी नहीं है**" | अतः शरीर और उसका हाथ भी "**पर**" है, अर्थात् "वेदना" और वेदना का अहसास "**वेदन**" भी "**पर**" का है, इसलिये "**वेदन**" नहीं होता है |
- आत्मा के "**अनन्त ज्ञान**" एवं "**ज्ञाता-दृष्टा**" **स्वभाव** से अथवा "**दृष्टा-अदृष्टा**" **स्वभाव से** आत्मा पर किसी भी पौद्गलिक वेदना (दुःख-दर्द) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है | इसलिये शारीरिक और मानसिक "वेदना" होने पर भी, "**आत्मा भोक्ता नहीं होने**" से, वेदना का "अहसास" अर्थात् "वेदन" नहीं होता है |
- आत्मा में "**शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि नहीं होने से**" आत्मा दुःख नहीं भोगती है | इस प्रकार "**आत्मा के स्वरूप**" में, "**निशंकित, पूर्ण और अखंडित श्रद्धा**" होने पर वेदन नहीं होता है | श्रद्धा कम होने पर, वेदन होता है, श्रद्धा के अनुसार |

करीब 2600 - 2000 वर्ष पुरानी घटनायें है - महावीर स्वामी के कानों में और ईसा मसीह के चारों हाथों और पैरों में कीले ठोके गये, तब उनके शरीर में "अत्यन्त वेदना" हुई, जैसी अपने को होती है | लेकिन वेदना का अनुभव नहीं हुआ क्योंकि उस समय वे केवल अपने आत्मा के स्वरुप में थे, अतः उन्हें अपने शरीर का भान नहीं रहा | आत्मा में लीन होने से, जीव की निज-आत्म-स्वरुप की दशा में शरीर, मन एवं बुद्धि का संयोग नहीं रहता है | इसलिए पीड़ित नहीं हुए, अर्थात् "वेदन" नहीं हुआ |

मन (Mind), **चित्त** (Present-Mind / part of mind) और **बुद्धि** (Intellect)**:**

मन (Mind) = अनादि काल से, कितने ही जन्मों से, "इस क्षण तक" बीते हुए समय की यादें, धारणायें, ज्ञान-अज्ञान, अन्य कोई छापे (Impressions). शेष कर्म (जिसका कर्म-फल बाकी है), अपूर्ण कार्य / कामनायें - इन सब की "**स्मृति**" और उनसे जुडी हुई "**भावनायें**" ही "**मन**" है | स्मृति और भावनायें अर्थात् मन का कुछ भाग "**मस्तिष्क**" के एक भाग में रहता है |

समय समय पर, किसी भी परिस्थिति में, **मन** के अन्दर "**स्मृति और भावनाओं**" की पृष्ठभूमि में, हम सोच-विचार करते हैं, कल्पना करते हैं और राग-द्वेष राग से कार्य करते हैं व उससे उपझे सुख दुःख आदि का अहसास (feeling) करते हैं |

पूर्ण स्मृति "**अवचेतन मन**" (Sub-conscious mind) में रहती है | उसमें से, कुछ समृतियाँ प्राथमिकता के अनुरूप अथवा "उदय में आये कर्म" के कारण **"चेतन मन**" (Conscious mind) में प्रकट होती है | वर्तमान समय में "5 इंद्रियों और मन" द्वारा अवशोषित (absorbed) नई छापे (new impressions) भी "चेतन मन" में आकर "अवचेतन मन" में संचित हो जाती है |

निद्रा में कुछ समय (1 से 2 घंटे तक), जब हम गहरी निद्रा में रहते है, उस समय हमें बाहर की साधारण आवाज़ नहीं सुनाई देती है और हमें कोई छुए तो भी मालूम नहीं पड़ता | ऐसे वक्त हम "**अचेतन मन**" में होते है | ऐसी स्थिति में हमारी प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाती है और दिन भर की शारीरिक और मानसिक थकान मिट जाती है |

इस तरह साधारणतया 3 प्रकार का मन होता है - **चेतन मन, अचेतन मन** और **अवचेतन मन** |

सम्मोहन ध्यान (Hypnosis) द्वारा "**अवचेतन मन**" से सम्पर्क किया जा सकता है, तब अपने **2 - 4 जन्म पहले** की कुछ घटनायें "अवचेतन मन" से निकल कर "चेतन मन" में आजाती है |

इस बारे में एक उदाहरण प्रस्तुत है :

एक लड़की ने करीब 16 वर्ष की आयु में अचानक बोलना बंद कर दिया | उसे हिप्नोटिस्ट डॉक्टर (Hypnotherapist) के पास ले जाया गया | 2 दिन में सम्मोहन ध्यान द्वारा, डॉक्टर और बीमार के बीच अबाधित संवाद से ज्ञात हुआ कि उसे 3 जन्म पहले किसी भयानक डरावने दृश्य की याद आने से बोलना बंद हुआ | इसके बाद 5 दिन तक, प्रति दिन करीब 20 मिनट के सम्मोहन ध्यान के दौरान डॉक्टर के समझाने के बाद लड़की ने बोलना शुरू कर दिया |

स्व-सम्मोहन क्रिया (Self-Hypnosis) द्वारा अपने जीवन में परिवर्तन लाकर, जीवन को कुछ सुखद बना सकते हैं, लेकिन परम आनन्द के लिए आत्म-जागृति और आत्म-अनुभूति ही सर्वोच्च विकल्प है |

बीते हुए समय की यादों के बारे में सोचकर ऊर्जा बेकार करना है, क्योंकि जो बीत गया, वो वापस आने का नहीं है, अच्छा या बुरा जो भी हो | लेकिन उससे सीख कर, भविष्य में, सावधान रह सकते हैं |

मन बहुत शक्तिशाली है - मन से बहुत कुछ सृजन (Create) कर सकते हैं | पृथ्वी तो करीब 4½ अरब वर्ष पुरानी है | विकास क्रम (Evolution) में मानव, इस धरती पर, कुछ लाखों वर्ष पूर्व प्रकट हुआ, तब से मानव का दिमाग परिष्कृत होता चला गया और मानव ने भौतिक विकास का रास्ता पकड़ा | मन की सोच से लकड़ियों से बनी खंडित झोंपड़ी से महल-मालिये खड़े कर लिये, बैलगाड़ी बनायीं, फिर इसके बजाय हवाईजहाज, स्पेसशिप आदि बना डाले | यह सब मन की सोच से रचनात्मक निर्माण है | कई सृजनात्मक खोजे भी कर डाली, जैसे X-RAY, रेडियो, मोबाइल आदि | शक्तिशाली मन की शक्ति, महा शक्तिशाली आत्मा ही उपलब्ध कराती है |

मन की 3 अवस्थायें और मस्तिष्क :

मन की अवस्था के अनुसार "मस्तिष्क में" तरंगे उठती है, जो EEG मशीन से नाप सकते हैं |

- **चेतन मन** (Conscious mind) **:**

  सक्रिय व्यस्त अवस्था (Actively busy state, including anxious thinking)

  (12 से 32 तरंगे प्रति सेकंड = बीटा तरंगे) = जागरूक अवस्था किसी सीमित दायरे में होती है : जागरूकता किसी बारे में हो सकती है | सतर्क, सजग अवस्था में एकाग्रता और निपुणता रहती है लेकिन कामकाज का प्रेशर से तनाव, चिड़चिड़ापन रहता है |

  शान्त अवस्था (Relaxed State)

  (8 से 12 तरंगे प्रति सेकंड = अल्फा तरंगे) = शान्त अवस्था, सीखने और अनुभव करने की अवस्था + रचनात्मक / सृजनात्मक कार्य करने की क्षमता |

  शान्ति की अवस्था में, जैसे "अनुलोम विलोम" प्राणायाम करते समय, "श्वास" की आवृत्ति (Frequency) कम होने पर, "मस्तिष्क" की तरंगो की आवृत्ति भी कम हो जाती है साधारणतया "श्वास" की आवृत्ति करीब 16 प्रति मिनट होती है और "मस्तिष्क" की तरंगो की आवृत्ति, 8 से 32 प्रति सेकंड होती है |

- **अवचेतन मन** (Subconscious-mind) **:**

  (4 से 8 तरंगे प्रति सेकंड = थीटा तरंगे) = गहरे ध्यान की अवस्था - सहज बोध, प्रज्ञा, स्वप्न | सम्मोहन / कृत्रिम निद्रावस्था (Hypnotic state) | 2 से 4 जन्म पुरानी यादें आती है |

- **अचेतन मन** (Unconscious mind) / **परम चैतन्य मन** (Supraconscious-mind) :

  (0.5 से 4 तरंगे प्रति सेकंड = डेल्टा तरंगे (Deep-Hypnotic state) **:**

  = बेहोश, गहरी निद्रा बिना स्वप्न के, परम विश्राम, स्व-चिकित्सा, गहन-सम्मोहन अवस्था :

  गहरी नींद में, दिन भर की थकान मिट जाती है | आत्म-स्वरूप में यही तरंगें रहती है - इसे "सामूहिक-चेतना" (Collective-consciousness) की स्थिति भी कहते हैं |

मन में 3 भावनायें : सात्विक, राजसिक और तामसिक

मन की मानसिकता :

- सकारात्मक मानसिकता
- नकारात्मक मानसिकता

उपर्युक्त मन की अवस्थायें, भावनाएं, मानसिकता आदि निर्भर करती हैं, अन्तःकरण में मौजूद रुचि-अरुचि, राग-द्वेष आदि और इससे प्रभावित प्रवृत्ति-निवृत्ति आधारित सोच पर |

मन की शक्ति और आत्मा की शक्ति :

मन की शक्ति को समझना है |

मन के बारे में कुछ "**कहावते**" हैं, जो काफी हद तक सच्ची हैं | जैसे "मन से ही सुखी और मन से ही दुखी" - "मन चंगा तो कठौती में गंगा" - "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत" |

आकर्षण का एक नियम है कि, "जैसा हम सोचते है, जैसा हम चाहते हैं, वैसा चुंबक की तरह हमारी ओर, आकर्षित होकर अपने आप खिंचा चला आता है | इसे Law of Attraction कहते हैं | कितने ही प्रयोग से अधिकतर यह प्रमाणित हो गया है कुछ सामान्य घटनायें हमें विदित है, जैसे किसी को याद

किया तो फोन आ गया, बेटा अचानक बीमार हो गया तो माँ को आभास हो गया, किसी से मन्नत मांगी तो पूरी हो गयी | इसका अर्थ यह नहीं कि मन्नत पूरी करने वाले व्यक्ति, स्थान, तंत्र-मंत्र आदि की कृपा है | अपने मन में श्रद्धा **/** आस्था होने पर, अपेक्षित विचार की तरंगे प्रवाहित होती है और उसी आवृत्ति (Frequency) का स्रोत खिंचा चला आता है | यही आकर्षण का नियम है | यह "कर्म" और "पुरुषार्थ" का प्रभाव है | मन्नत हर बार पूरी नहीं होती है | श्रद्धा / आस्था से काम बन सकता है, अगर श्रद्धा अटूट हो | लेकिन हर बार ऐसा सम्भव नहीं | लेकिन आत्मा में अटूट श्रद्धा हो तो, हर बार सत प्रतिशत काम बनता है |

मन की शक्ति आत्मा से ही आती है | लेकिन मन की भौतिक शक्ति "सीमित है" | आत्मा की शक्ति "अभौतिक" और "असीमित" है | मन की शक्ति का स्रोत (Source) आत्मा है | बेहतर यह है कि स्रोत को ही काम में लिया जाय, फिर कोई भी काम पक्का बन जायेगा | अतः **"कहावतें"** इस प्रकार हो - "आत्मा से ही पूर्ण सुखी, बाकी सबसे दुखी" - "आत्म-ध्यान है, तो सब जगहं गंगा ही गंगा" - "आत्मा को जाने तो जीत पक्की और अनात्मा से तो अन्त में हार ही है" |

मन का नियंत्रण :

चंचल मन को नियंत्रण में रखना जरूरी है (पुरुषार्थ से), ताकि मन की सोच से अनुचित कार्य नहीं हो | कई बार हमारे दृष्टिकोण से, हमारे मन, वचन और काया से की गयी "उचित" क्रिया भी, किसी को दुःख पहुँचाने का कारण होती है | मेरे अज्ञानवश, मेरी तरफ से "उचित" क्रिया भी "अनुचित" क्रिया साबित होती है और कर्म बंध होता है |

मन में अनुचित विचार आते ही, मन में "नहीं, नहीं, नहीं" कह कर, मन को "सही दिशा" में "शिक्षित" करने का "अभ्यास" करने से मन नियंत्रित हो सकता है | मन को दूसरी दिशा में मोड़ने से (Diversion) से भी काम बनता है | लेकिन ये सब अस्थायी समाधान है | वास्तव में "**नियंत्रण**" ठीक नहीं है | मन का स्तर ऐसा हो कि "**सहज**" रूप से "**संतुलित**" और "**पवित्र**" आचरण हो |

मन के नियंत्रण का स्थायी समाधान तो "आत्म-जागृति" है और "आत्म-अनुभूति" है |

चित्त :

चित्त मन का ही एक भाग है | जिस क्षण, जो विचार आता है, भावना (Emotion) के साथ, वही मन, उस समय अपना "चित्त" है | जब भी मन माफिक काम नहीं होता है अथवा शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा या अधिक रुचि या अधिक अरुचि होती है, तब चित्त विचारों में अटक कर परेशान रहता है | बदलते हुये चित्त का अर्थ है, मन का भटकना | पतंजलि दर्शन में "चित्त की वृत्ति" का निरोध करना ही योग है |

बुद्धि :

बुद्धि का कार्य है - सोच-विचार, चिंतन, मनन, सीमित-ध्यान, सीमित-विवेक आदि | बुद्धि "अपने हिसाब से" उचित-अनुचित, लाभकारक-हानिकारक, "आधे अधूरे सोच-विचार" उपजाती है | बुद्धि के कारण घर में अपनों और बाहर अन्य को सलाह देना, हस्तक्षेप करना बहुधा समस्याएँ पैदा करता है |

सामान्यतया बुद्धि भटकाती है | लेकिन बुद्धि का "सही उपयोग" भी किया जा सकता है - ध्यान, चिंतन, मनन से "वास्तविकता" समझ कर, स्वयं आनन्द में रहे और अपने संपर्क में आने वालों को "बहकाये नहीं और दुखी नहीं करे" | "**आत्मीय प्रेम**" - बिना स्वार्थ, बिना आशा और बिना राग वाला होता है | आत्मीय प्रेम करने वाले अधिकतम सम्भव, बिना राग के, सबकी मदद करने को तैयार रहते हैं | तब

समर्पण भाव, सहनशक्ति, संतुलित सोच आदि विकसित होते हैं और विषय-वासना, कषाय, प्रमाद आदि से काफी छुटकारा पाकर "**आत्म-ज्ञान**" होना शुरू हो जाता है और "बुद्धि" के बजाय "विवेक" काम करने लग जाता है |

ज्ञान, आत्मज्ञान और केवलज्ञान / ब्रह्म ज्ञान :

"अच्छे आचरण" के बारे में साधारण ज्ञान हम सब में है, जैसे किसी को दुःख नहीं देना, गुस्सा नहीं करना, अभिमान नहीं करना, लोभ नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, पवित्रता से रहना आदि | लेकिन अधिकतर यह साधारण जानकारी या कोरा ज्ञान है | इसका "हमें ज्ञान है", यह कहना तब उपयुक्त होगा, जब हम इसका विवेक से सदुपयोग कर "**अनुपम अनुभव**" करें | ऐसा ज्ञान "**अभ्यास**" से सीखा जा सकता है | वैसे अनेक क्षेत्र में अनेक प्रकार के ज्ञान है | ज्ञान अनन्त है | अनुभव भी अनन्त है |

"असल ज्ञान" वह है, जो अनेक दृस्टि से "**सत्य**" हो | ऐसा ज्ञान तो केवल "**आत्म-ज्ञान**" है, जो सीख नहीं सकते | आत्म-ज्ञान हमारे अन्दर आत्मा का है, जो पहले से ही है | यह तो "**स्व-प्रकट**" होता है, जब इसकी "**अति तीव्र प्यास**" लगे |

- जैसे जैसे ज्ञान अधिक उतरता है, वैसे समझ में आता है कि हमारे में कितना अधिक अज्ञान है |
- जब भी हमने समझ लिया कि हमें सब आता है, तब ज्ञान का आना रुक जाता है |
- **आत्मज्ञान** ही सर्वोच ज्ञान है | आत्मज्ञान की पूर्णता ही **केवल-ज्ञान** है, **ब्रह्म ज्ञान** है |
- जब तक **"ज्ञानावरणीय कर्म"** लगा हुआ है, तब तक **सम्पूर्ण ज्ञान** अर्थात् **केवलज्ञान** नहीं हो सकता लेकिन इसके काफी करीब पहुँच सकते हैं | सभी कषायों का पूर्ण क्षय करके, मोहनीय कर्म को पूर्ण नष्ट करके, जीव बारहवें गुणस्थान (12th Gunsthan) को प्राप्त करता है | बारहवें गुणस्थान के अंत में, ज्ञानावरणीय कर्म (दर्शनावरणीय कर्म और अन्तराय कर्म के साथ) की निर्जरा होती है, तब जीव तेरहवें गुणस्थान (13th Gunsthan) को प्राप्त करता है और जीव केवल-ज्ञानी, वीतरागी, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है | "केवल ज्ञान" को कोई "ब्रह्म ज्ञान" के नाम से जानते हैं |

अहंकार (अहं) और अभिमान :

"मैं" में "**मैंपन**" का भाव ही "**अहं**" अर्थात् "**अहंकार**" (EGO) है |

* "मैं बोल रहा हूं" में "मैं का भाव" → "बोल" के सन्दर्भ में, छोटा अभिमान
  ["**मैं**" ही सब दुखों की जड़ है]
* "मैं" "अच्छा बोल" रहा हूं → "बोल" के सन्दर्भ में, बड़ा अभिमान
* "मैं" "बहुत अच्छा बोल रहा हूं → "बोल" के सन्दर्भ में, बहुत बड़ा अभिमान

"**अहंकार**" अर्थात "**अहं**" से "**अभिमान**" का जन्म होता है | हम अपने अभिमान को पुष्ट करने के लिए, दिखावा अथवा किसी न किसी के प्रति अविनय, किसी का अपमान आदि करते हैं और असत्य, आदि का सहारा लेकर माया करते है - छल करते है | इस प्रकार अपने आप को और अन्य को धोखा देते है, किसी को दुखी करते हैं और कर्म बंधन कर, फलस्वरूप दुःख भोगते हैं |

कषाय आत्मा, योग आत्मा आदि नहीं :

कुछ शास्त्रों में आचार्यों ने आत्मा के 8 स्वरूप बतायें है, जो व्यावहारिक भाषा की दृष्टि से बतायें गये है | किन्तु निश्चय-नय से, 6 स्वतन्त्र तत्व (द्रव्य) में से 1 स्वतंत्र तत्व की सत्ता की दृष्टि से आत्मा "केवल आत्मा" है - पाप पुण्य से परे | जो भी विकार हैं, वह जीव में हैं | आत्मा द्रव्य-आत्मा, कषाय-आत्मा, आदि 8 आत्माएं नहीं हो सकती |

कीचड़ या अमृत में पड़े सोने का कण, सोना ही है, कीचड़-सोना नहीं या अमृत-सोना नहीं |

"मैं हूँ आत्मा", फिर भी समझने में मुश्किल :

"आत्म-अनुभूति" के लिए, "आत्म साधना" की आवश्यकता होती है |

आत्म साधना के अभाव में मेरा वही हाल है, जैसे मेरे बैंक खाते में 100 करोड़ रुपये है, लेकिन उसकी स्मृति नहीं होने से, "मैं अपने आप को दरिद्र मानता हूं और दुखी होता रहता हूं" | ऐसी स्थिति में, रुपये खोजने के लिए साधना नहीं करनी है | जरूरी यह है कि "तीव्र प्यास", सर्वोच प्राथमिकता और "ध्यान-अभ्यास" से, स्वतः ध्यान आजाय कि मेरे बैंक के खाते में इतने सारे रुपये है और उसका उपयोग करने से मेरे और कई अन्य जनों की सब भौतिक जरूरतें पूरी हो जायेगी | इसी प्रकार, अपने सब दुःख दूर करने के लिए "**आत्मा का उपयोग**" है | आत्मा हमारे साथ है, लेकिन "**आत्मा की अनन्त शक्ति** की **स्मृति**" और "**अटूट विश्वास**" नहीं होने से, इसका चमत्कारी उपयोग नहीं हो पाता | यह तो उसी प्रकार का आश्चर्य है कि मेरे में 20 किलो वजन उठाने की क्षमता है, फिर भी आत्मविश्वास नहीं होने के कारण, मैं अधिक से अधिक केवल 1 किलो वजन ही उठा पारहा हूँ, जब कि कितनी ही बार मुझे 20 किलो वजन उठाने की जरुरत पड़ती है |

फिर समझ में आया, जो हम बहुत मेहनत से, ध्यान साधना आदि से खोज रहे है, वह आत्मा (शुद्ध आत्मा, पवित्र आत्मा, परमात्मा - जैसा भी समझे) वह तो पहले से ही "**वास्तविक मैं स्वयं हूँ**" | **आत्म-साधना**" केवल यह है कि "**जो पहले से ही है**", **उसे** पहचानना है - उसका प्रकट होना है |

हर व्यक्ति की पूर्व कर्म स्थिति, आज की परिस्थिति और क्षमता अलग है, अतः साधना की गुणवत्ता और साधना-काल, हर व्यक्ति के लिए अलग अलग होंगे |

"केवलज्ञान" प्राप्त करने के पहले महावीर स्वामी ने 12 ½ वर्ष तक साधना की | महावीर स्वामी के निर्वाण से करीब 250 वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ भगवान के लिए, "केवलज्ञान" प्राप्त करने के लिए 84 दिन तक की साधना ही काफी थी और उन्नीसवें तीर्थंकर मल्ली नाथ भगवान को, दिक्षा के बाद, प्रथम प्रहर में ही केवलज्ञान प्रकट हो गया |

स्वाध्याय : (Self-study)

स्वाध्याय अर्थात् अपना "**एक एक दोष पर्याय पकड़ कर, सदैव के लिए, सहजता से छोड़ दिया जाय**" और ऐसे छोड़े जो दूबारा प्रकट नहीं हो | इसके लिए शक्ति तो "**स्व की शुद्ध-आत्मा**" से आसानी से मिल जाती है, अगर आत्मा की अनन्त शक्ति में अनन्त श्रद्धा हो | पहले बड़े दोष छूटते हें फिर बारीक दोष मालुम पड़ते हैं, जिन्हें छोड़ते जाना है |

कई धर्मो और मतों की मूल शिक्षा का अध्ययन करने के बाद स्पष्ट हो गया कि, कोरे ज्ञान का कोई लाभ नहीं है, जब तक ज्ञान का जीवन में उपयोग नहीं किया जाय | जैसे हमें ज्ञान है कि, झूठ बोलना खराब है लेकिन डर, दिखावा, स्वार्थ आदि के कारण झूठ बोला जाता है | फिर ऐसे कोरे ज्ञान का क्या लाभ | हमें ज्ञान है कि, गुस्सा करने से अनेक नुकसान हैं | लेकिन हम जो चाहते हैं, हमें नहीं करने दिया जाय, तब गुस्सा आजाता है | कितनी ही पुस्तकें पढ़ लो, प्रतिक्रमण कर लो, प्राणायाम कर लो, तीर्थ यात्रा कर लो आदि, फिर भी गुस्सा छूटता नहीं है | गुस्सा छोड़ने का एक ही उपाय है - एक "**दृढ सोच**" कि गुस्सा नहीं करना है, किसी भी परिस्थिति में, चाहे कुछ भी होजाय |

"**जो सोचा**" उसे "**कार्यान्वित किया**" धन्ना सेठ ने और जम्बु कुमार ने | धन्ना सेठ की 8 धर्मपत्नियों में से 1 धर्मपत्नी सुभद्रा को बहुत दुखी देखकर, धन्ना सेठ ने दुखी होने का कारण पूंछा, तब सुभद्रा ने

कहा कि, "उसके भाई शालिभद्र ने सन्यास लेने का निश्चय कर लिया है और वह अपनी 32 धर्मपत्नियों को 1 - 1 करके छोड़ रहा है, इसी कारण से वह दुखी है | यह सुनकर धन्ना सेठ ने कहा कि "तुम्हारा भाई डरपोक है, जो 1 - 1 करके छोड़ रहा है - छोड़ना है तो तुरन्त छोड़ दो" | यह सुनते ही सुभद्रा ने कहा कि, "कहना आसान है, करना मुश्किल" | तब धन्ना सेठ ने तुरन्त आठों धर्मपत्नियों को छोड़ कर सन्यास ले लिया | जम्बु कुमार ने, 8 संस्कारी सुन्दर कन्याओं के साथ, माता पिता की शर्त मानते हुए, विवाह कर लिया लेकिन पूर्व दृढ सोच के अनुसार, विवाह के तुरन्त बाद सन्यास ले लिया | "आत्म-पुरुषार्थ" से "निरंतर आत्म जागृति" रहने पर, "**दृढ सोच**" हो जाती है |

हम कहते हैं कि, हम "लोभ" के बारे में जानते हैं - "कई प्रकार के लोभ" होते हैं, यह भी जानते हैं | हमनें धन-दौलत रखने का त्याग कर रखा है लेकिन किसी अच्छे उद्देश्य के नाम से पैसा इकट्ठा करवाते हैं तो यह भी लोभ है | लोभ तो लोभ होता है | बहुधा "निष्काम कर्म योग" के अपूर्ण ज्ञान से अथवा भला करने के भाव में, "लोभ" और "अभिमान" पनप जाते हैं, जो कर्म बंधन के कारण बन जाते हैं |

सब प्रकार के विषय + क्रोध मान माया लोभ कषाय + सब प्रकार के आकर्षण, शोक, भय, हास्य, रति-अरति + प्रमाद आदि छूटने पर, मानव 9 वें गुणस्थान में पहुँचता है, फिर भी 10 वें गुणस्थान (10th gunsthan) के प्रारम्भ में "संज्वलन" श्रेणी का अति क्षीण लोभ उदय होता है | लेकिन 10 वें गुणस्थान के अंत में, अति क्षीण लोभ का, अगर हमेशा के लिए, क्षय हो जाता है, तब 10 वें से सीधे 12 वें गुणस्थान में पहुँच जाते है | अगर "संज्वलन-लोभ" कषाय का उपशमन (दबाकर शांत) करके 11 वें गुणस्थान में पहुंचे तो, नीचे गिरते जाते हैं, जैसे वायु से हलकी राख उड़ने पर, लोभ की अग्नि दहकने लगती है |

"संज्वलन-लोभ" पानी में खींची लकीर के समान, जो खींचने के साथ ही मिटती चली जाती है अर्थात् सूक्ष्म लोभ का भाव आता है, परन्तु लोभ करते नहीं है | क्षीण लोभ का भाव आते ही, वह क्षीण-लोभ-पर्याय छूट जाता है | तथापि "लोभ का भाव" ही "लोभ" है | ऐसा "लोभ" छूट नहीं पारहा है |

पर-दृष्टि, आत्म-दृष्टि और **ज्ञान :**

ज्योंही **"पर"** पर दृष्टि गयी, **"आत्म-दृष्टि"** गायब | "**मेरा**" यह **"शरीर मन-बुद्धि-कर्म सहित"** एवं सब "**रिश्ते-नाते**" और यह पूरा संसार **"पर"** है | इसका अर्थ यह नहीं कि, रिश्तों नातों से, अन्य व्यक्तियों से और अन्य जीवों से कोई सरोकार नहीं हो | इन सबसे "**राग रहित आत्मीय प्रेम**" हो - करुणा भाव, निस्वार्थ भाव, आशा रहित हो कर, सदैव "विवेक" से सब का "सहायक" बने रहते हुए |

ऐसा मानना है कि "स्थायी सुख" चाहिए तो "स्थायी आत्मा से जुड़ो" लेकिन जुड़ने से काम नहीं बना | अमीर के साथ जुड़ने से अमीर नहीं बन पायेंगे | स्वयं पुरुषार्थ कर अमीर बनना है | इसी प्रकार, स्वयं को ही "आत्म-पुरुषार्थ" कर, आत्मा का अनुभव करना है | **"सांसारिक पुरुषार्थ"** (श्रम) से काम नहीं बनेगा | पहले ऐसा लगता है कि "आत्म ज्ञान" हो गया | बाद में अक्सर यह मालूम पड़ता है कि "**जिसे आत्म ज्ञान समझा**" वो तो "**कोरा ज्ञान**" था | जब तक किसी भी ज्ञान का "**गहरा अप्रत्याशित अनुभव**" नहीं हो जाय, कोरा ज्ञान ही है |

आत्म जागृति और **आत्म-अनुभूति क्यों नहीं हो पाती ?**

- **भाग्य + आत्म-पुरुषार्थ की कमी :**
  इसके लिए पेज 6 और 7 पर वर्णित बाधाओं को दूर करना है |
- **आत्मा का स्वरूप** और **उसके अनन्त** गुणों में **पूर्ण श्रद्धा नहीं होना :**

आत्मा की अनन्त शक्ति, अनन्त सुख (परम आनन्द), अनन्त शान्ति, अनन्त तृप्ति, अनन्त ज्ञान, अकर्ता-अभोक्ता, ज्ञाता-दृष्टा भाव आदि गुणों में "**दुविधा-रहित, निशंकित, अखंडित, अडिग विश्वास**" नहीं होने से आत्म जागृति नहीं हो पाती है |

श्रद्धा की भारी कमी के कारण, पहले तो "आत्मा" क्या होती है - यह समझ में नहीं आता है | बाद में समझ आ भी जाये तो आत्मा के "अनन्त गुणों" में विश्वास नहीं होता है, लक्ष्य के प्रति तीव्र प्यास नहीं लगने के कारण और सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं होने के कारण | अगर "कुछ विश्वास" हुआ, लेकिन "अटूट विश्वास" नहीं होने के कारण, "आत्म-शक्ति" का उपयोग" नहीं हो पाता, | अतः "आत्म-जागृति" नहीं होती है - इसलिए "आत्म-अनुभूति" भी नहीं हो सकती |

- **आत्मीय प्रेम में कमी** से **अन्तराय कर्म** का हावी होना **:**

  इस कारण अपनी आत्म शक्ति का उपयोग नहीं हो पाने से गहरा चिन्तन मनन नहीं हो पाता |

जो दिखता है वह कितना भ्रामक होता है - कुछ उदाहरण :

पूरा संसार ही भ्रम है, भ्रमित करता है | यह जानने के बाद कि "केवल आत्मा ही सत्य है", तब बाकी सब भ्रम छिन्न-भिन्न हो जाते हैं | उदाहरनार्थ :

(1) सूरज और पृथ्वी जो स्थिर दिखते हैं, वे वास्तव में स्थिर नहीं है | इनके बहुत सारे ऐसे घुमाव है, जिनकी सामान्य रूप से कल्पना भी नहीं कर सकते |

हबल दूरबीन से आकाशगंगा (Milkyway Galaxy) में 100 अरब से अधिक तारे दिखाई देते हैं, जो आपसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से जुड़े हैं | उनमें से 1 तारा हमारा "सौर मंडल" है |

हमारे "सौर मंडल" में **सूरज** करीब 4**½** अरब वर्ष पुराना है और करीब 5 अरब वर्ष बाद तक दिखाई देगा | सूरज पृथ्वी से करीब **15** करोड़ किलोमीटर दूर है | यह अत्यन्त छोटा सा सितारा सूरज अपने 10 ग्रहों और उपग्रहों के साथ निम्न प्रकार से, चल फिर रहें हैं |

- 1,08,000 किलोमीटर प्रति घंटा (30 किलोमीटर प्रति सेकंड) की रफ़्तार से, **"पृथ्वी"** (पृथ्वी स्वयं अपनी धुरी पर 1674 Km/hr से स्पिन करती हुई) अंडाकार ऑर्बिट में, "**सूरज**" के चक्कर लगा रही है और 1 चक्कर 1 वर्ष में पूरा करती है | इसके कारण ही जलवायु परिवर्तन की दशा की प्रति वर्ष पुनरावृत्ति होती है | इसके अलावा, हमेशा पृथ्वी के साथ चन्द्रमा रहता है, जो 3683 Km/hr की रफ़्तार से, करीब 28 दिन में, पृथ्वी के 1 चक्कर लगातार लगाता रहता है |
- 25,144 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ़्तार से "**सूरज**", अपने पृथ्वी आदि 9 ग्रहों के साथ" **(सौर मंडल)**, सीधा ऊपर उठ रहा है, आकाश गंगा के समतल से |
- 69,524 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ़्तार से, "सूरज" अपने पृथ्वी आदि 9 ग्रहों के साथ (सौर मंडल), लेमडा हेरकुलस सितारे की तरफ टेढ़ा जा रहा है |
- 8,28**,000** किलोमीटर प्रति घंटा की रफ़्तार से**, सौर मंडल** ("**सूरज**" अपने पृथ्वी आदि ग्रहों और पृथ्वी के उपग्रह चन्द्रमा आदि के साथ), आकाश गंगा के मध्य (GALACTIC CENTER) के चारों तरफ, परिक्रमा कर रहा है | ऐसी परिक्रमा का 1 चक्कर, 23 करोड़ वर्ष में पूरा करता है | सौर मंडल चक्कर लगाता ही रहेगा, जब तक करीब 5 अरब वर्ष के बाद सूरज विस्फोट होकर समाप्त न हो जाय | सूरज और पृथ्वी के अलावा केवल आकाशगंगा से जुड़े हुये खरबों तारे सितारे, कितनी ही प्रकार से, कितनी ही अकल्पनीय गति से, भ्रमण कर रहें हैं | इसी कारण बदलते हुये "**युग**" (6 आरों के कुछ भाग) होते हैं | युग के हिसाब से, और युग के अलग अलग समय में, वायु मंडल और मानव मस्तिष्क के बदलते रूप होते है | लेकिन मानव में ऐसी

"आत्म-शक्ति" है कि, किसी भी वातावरण में, अपने हिसाब से आराम से, शान्ति से जीवन जी सकता है, अनन्त आत्म-शक्ति के सहारे |

(2) प्रकाश के अभाव में घना अंधकार और उससे उपजा डर, दोनों ही भ्रम है |
जैसे, अमावस्या की काली रात्रि में, एक खाली घर के अनेक कमरों में, बिना प्रकाश के, किसी भी कमरे में कोई भी वस्तु अथवा कोई भी जीव नहीं होने पर भी, एक कमरे में, एक व्यक्ति को, अंधकार में डर लग सकता है | दिया जलाते ही भ्रमित करने वाला अंधकार और डर, दोनों ही गायब हो जाते हैं | अंधकार कुछ भी नहीं है, प्रकाश का नहीं होना ही अंधकार है, जैसे अज्ञान का नहीं होना ही ज्ञान है |

(3) मृगतृष्णा वाले भ्रम से तो हम परिचित हैं | चमकती हुई अच्छी डामर रोड दोपहर की धूप में, दूर से देखने पर पानी होने का भ्रम होता है | पौद्गलिक सुख भी ऐसे ही भ्रमित करता है |

सत्य :

"सत्य" को समझने के लिए जैन दर्शन की अनुपम देन **"स्याद्वाद"** है | सत्य को जानने के लिए, अनेक दृष्टियों से - ज्ञात और अज्ञात दोनों से, स्पष्ट समझना पड़ता है | "सत्य" को जब तक "**स्यादवाद**" से नहीं समझा जाय, तब तक कुछ दृष्टियों से जाना गया सत्य "**अपूर्ण-सत्य**" होता है, जो अधिकतर भ्रमित और संकटपूर्ण होता है |

"**अनेकान्तवाद**" स्यादवाद का "**एक पहलू**" है, जिससे अनेक दृष्टियों से बुद्धि से जाना जाता है | जैसे अनेकान्तवाद से 4 अन्धो द्वारा हाथी की अलग अलग पहचान - खम्बा, दिवार, सुपड़ा, बड़े पाइप के रूप में, जो गलत है | **निक्षेपवाद** से घोड़े की पहचान घोडा शब्द, कोई विशेष नाम, उसकी आवाज, काठ के घोड़े का स्थापन आदि से पहचान, जो गलत भी हो सकती है + **सापेक्षवाद** से छोटी और बड़ी लकीर की, तीसरी बहुत बड़ी लकीर से तुलना से छोटे बड़े के बारे में गलत धारणा + **नय-प्रमाणवाद** से, कहीं दूर धुआं दिखने के बारे में अलग अलग कारण की सोच, जैसे अग्नि, रसायन, प्रकाश से छलावा आदि + **विज्ञानवाद और गणितीय-तर्क** से अलग अलग प्रयोगों के आधार से समान अथवा विरोधाभास परिणाम |

द्रष्टा द्वारा भी प्रत्यक्ष देखा हुआ भी अक्सर गलत होता है - **भ्रामक** होता है, स्यादवाद से नहीं दिखने के कारण | **दार्शनिक** वह है**,** जो सोचे । **द्रष्टा** वह है**,** जो **देखे** | सोचने से **दृष्टि** नहीं मिलती जैसे अंधे को प्रकाश अज्ञात है - अंधा लाख सोचे तो भी प्रकाश के सम्बन्ध नहीं जान पायेगा, उसके लिए प्रकाश का ज्ञान स्यादवाद से मिलेगा | सत्य अधिकतर अज्ञात है, जब तक स्यादवाद से अत्यन्त गहराई तक, प्रज्ञा से, विवेक आदि से नहीं समझा जाय |

आत्मा द्वारा "**आत्मज्ञान**" से वास्तविक सत्य जाना जा सकता है | तब 4 विपरीत दृष्टिकोण (एक ठीक, दूसरा गलत, दोनों ठीक और दोनों गलत) ज्ञात होते है | इस आधार से आत्म-ज्ञानियों को ज्ञात हुआ कि, "**पूर्ण सत्य**" तो "**आत्मा**" ही है - सत्य, सत्य ही होता है त्रिकाल में और तीनो लोको में | ऐसे जाने हुए "सत्य" को **निश्चय-नय** से जाना हुआ सत्य कहते हैं | बाकी और **कितने ही प्रकार के नय** से जाने हुए ज्ञान अपूर्ण है |

धार्मिक शास्त्रों में मतभेद और हमें क्या मानना है ?

"**शुद्ध-आत्मा**" **(चेतन)** के बारे में करीब करीब सब धर्म-शास्त्रों में मतभेद नहीं है | "बोद्ध दर्शन" आत्मा को नहीं मानता है लेकिन आत्मा का लक्षण "चेतना" (consciousness) को मानता है |

बौद्ध दर्शन के अनुसार मानव 5 स्कन्ध से बना है उसमें से एक है "चेतना" | बाकी 4 हैं - शरीर-रूप, (पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल तत्वों से बना) संवेदना, (sensation / feeling) अनुभूति / अनुभव, और संस्कार (आदतें - विचार, धारणाएं, बाध्यताएं आदि) |

आमतौर पर आत्मा और आत्मा के अनन्त गुणों के बारे में मतभेद नहीं है, लेकिन आत्मा, परमात्मा, जीव, अजीव और प्रकृति के आपसी सम्बन्ध के बारे में अलग अलग धारणाएं है |

सांख्य दर्शन के अनुसार ब्रह्मांड में 2 तत्व हैं : "**पुरुष**" (चेतन तत्व अर्थात् आत्मा) और "**प्रकृति**" (पुद्गल) या यूँ कहिये "**जीव** और **अजीव**" | यह "**द्वेत**" मत है | जैन दर्शन मोटे रूप से इसी मत को मानता है | गहराई से देखे तो कुछ मतभेद इस "**द्वेत**" सिद्धांत में भी है जैसे "आत्मा सो परमात्मा" अर्थात् "शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है" | हर जीव - मानव या जीव जंतु या पेड़ पौधे आदि की "शुद्ध/पवित्र आत्मा" ही परमात्मा है या परमात्मा का अंश है - उसके "अनन्त गुणों" सहित | लेकिन जैन दर्शन के अनुसार, हर जीव की आत्मा में, सब आत्माओं की तरह वही अनन्त गुण होते हुये भी, हर जीव की आत्मा अलग है और अलग ही रहेगी मोक्ष के बाद भी |

एक मत यह है कि जीव की आत्मा, परमात्मा का अंश है और मृत्यु के पश्चात जीव का आत्म तत्व परमात्म-शक्ति / लौकिक ऊर्जा (Cosmic energy) में मिल जाता है और जीव के जन्म के समय, परमात्म-शक्ति / लौकिक ऊर्जा का एक अंश, आत्मा के रूप में, जीव में आजाता है | इस विचार से, शरीर 5 तत्व से बना है - पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश (Living-Space) |

कुछ ऋषि मुनि "**अद्वेत**" मत को मानते है - सब जीव में परमात्मा का अंश है और शेष प्रकृति परमात्मा की अभिव्यक्ति है और कितने ही ब्रह्माण्ड, प्रकृति और उसमें सब जीव और पदार्थ 1 ही तत्व है और वो है - परमात्मा या ईश्वर या कॉस्मिक शक्ति, जो भी नाम मानना चाहे |

अन्य ऋषि मुनि "**द्वेताद्वेत**" सिद्धांत का अनुसरण करते हैं अर्थात् जीव अजीव दोनों हैं भी और नहीं भी अर्थात शून्य "0" से भौतिक अनन्त और भौतिक अनन्त से "0" का संभव होना - शक्ति और पदार्थ के आदान प्रदान से | 2008 में फ्रांस और स्विट्जरलैंड की सीमा पर करीब 175 मीटर की गहराई में एक दुर्लभ प्रयोगशाला बनाई गयी | इस प्रयोगशाला में, 27 किलोमीटर परिधि का एक गोल "हेड्रान कोलाइडर हाई एनर्जी पार्टिकल एक्सेलरेटर" यंत्र में, प्रयोगों के बाद, 2012 में यह सिद्ध हो गया कि पूरे ब्रह्माण्ड में एक ही शक्ति फैली हुई है, उसका नाम है - "हिग्ग्स फील्ड", (Higgs Field) जो वैक्यूम में भी है | इस हिग्ग्स फील्ड में अगर एक वजन रहित (शक्ति के रूप में) प्राथमिक कण (Elementary particle) डालो तो, वह बहुत वजन के रूप में बढ़ जाता है | "हिग्ग्स फील्ड" में "हिग्ग्स बोसॉन कण" है, जिसे "भगवान का कण" का नाम दिया और इसका बहुत प्रचार हुआ| वैसे यह भगवान का कण नहीं है लेकिन एक असंभव सी संभावना की तरफ इंगित करता है | यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि एक प्राथमिक कण का, एक सेकंड के 1 करोड़ से 100 करोड़वें भाग के समय में विनाश (annihilation) हो जाता है और नये कण प्रकट (create) हो जाते हैं, पुराने कण + नये कण के रूप में, जिसे फोटोग्राफिक प्लेट पर देख सकते है |

कुछ ऋषि मुनि यह मानते हैं कि, अपना जीवन शत प्रतिशत परमात्मा की इच्छा अथवा अपने भाग्य से चल रहा है - अपना कोई योगदान नहीं है | यहाँ तक कि, पुरुषार्थ भी भाग्य के कारण ही होगा |

कोई भी व्यक्ति, किसी भी सिद्धांत को माने, अगर उस सिद्धांत से उसका "वास्तविक आनन्द" दिनों दिन बढ़ता जाय तो वह सिद्धांत उसके लिये सबसे अच्छा है | सैद्धांतिक सोच विचारों में उलझ कर, समय व्यर्थ गंवाना उचित नहीं लगता है |

धार्मिक शास्त्रों में मतभेद क्यों है ?

उपर्युक्त विवेचन में सैद्धांतिक मतभेदों की बात की | वास्तव में, एक ही धर्म में, आचार विचार आचरण सम्बन्धी भी कई प्रकार के मतभेद हैं | इसीलिए एक धर्म में भी कई मत पनप गये अतः हम, इस युग में, मूल ज्ञान से दूर होते जा रहें हैं | कुछ मतभेद के निम्न कारण है :

- "मूल-ज्ञान" तीर्थंकर, ऋषि महर्षि, भगवान् के अवतार, महापुरुष आदि के वचनों से 2,000 से 15,000 वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ| उस समय जो श्रुत ज्ञानी / श्रुत केवली थे, उन्होनें सब ज्ञान ज्यों का त्यों स्मृति में रखा | बाद में पीढ़ी दर पीढ़ी मूल-ज्ञान हस्तांतरित होता रहा |
- कागज तो करीब 500 वर्ष पहले उपलब्ध हुए, जिस पर शास्त्र आदि लिखे गये | इतने समय के अन्तराल के बाद, आचार्यों द्वारा अपनी अपनी स्मरण-शक्ति और बुद्धि के अनुसार व्याख्या कर, लिखे गये शास्त्र, टीकाएँ आदि में स्वाभाविकतया कुछ तो मतभेद होना ही है |
- अधिकतर मूल ज्ञान प्राकृत, अर्ध-मागधी, पाली और संस्कृत भाषा में था | इन चारों में से किसी एक भाषा में भी एक शब्द के अलग अलग अर्थ होने के कारण मतभेद हो गया | इसके अलावा अलग अलग समय पर, एक से दूसरी भाषाओं में अनुवाद करने के कारण से भी भिन्नता आगई |

उपर्युक्त कारणों से, शास्त्रों में काफी मतभेद स्वाभाविक है | लेकिन मूल रूप से तो कोई भेद हो ही नहीं सकता क्योंकि सत्य तो सत्य है |

आत्म-जागृति और आत्म-अनुभूति कैसे होगी :

हर व्यक्ति अपनी समस्याओं का स्थायी समाधान, "स्वयं" द्वारा "स्व" का "आन्तरिक अन्वेषण" (self-enquiry), खुले दिल से "अपने अन्दर" ही ढूढ़ने से "लगातार सीखता हुआ", प्राप्त कर सकता है | अंत में उसे अपने "वास्तविक स्वयं का अहसास" (Self Realisation) हो जाता है अर्थात् उसे यह अच्छी तरह से निशंकित ज्ञात हो जाता है कि वास्तव में, स्थायी रूप से, वह स्वयं केवल "शुद्ध-आत्मा" है - "शरीर, मन, बुद्धि और कर्म रहित" | तब वह कहता है, मानता है, अहसास (feeling) करता है कि, "मैं" **सत-चित-आनन्द स्वरूप** हूँ, तब उसे "**आत्म-जागृति**" है | और जब ऐसा कहना या मानना या अहसास करने के बजाय, उसका वही स्वरुप रह जाता है, तब "**आत्म-अनुभूति' की झलक** संभव है |

"आत्मा को जानने की सर्वोच्च प्राथमिकता" से "आत्म-पुरुषार्थ" करते रहने से से "**आत्म जागृति**" का अधिकतर उपयोग होने पर, अपने आचरण की पवित्रता बढती जाती है | "निरंतर आत्म-जागृति" में रहते हुए, मानव "आत्म-अनुभूति' अर्थात् "आत्म-अनुभव" कर सकता है |

"आत्म-अनुभूति की झलक" की पुनरावृत्ति से, विचारों की शून्यता अधिक से अधिक होने से (अगर इस युग में हो सके तो), मेरे में से "**मैंपन**" और "**मेरापन**" निकल जाता है | अंत में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान / केवलज्ञान प्राप्त कर कोई भी व्यक्ति जन्म मरण के बंधन से मुक्त होकर भ्रामक सुख और दुःख से, स्थायी छुटकारा पा सकता है |

आत्म-अनुभूति (आत्म साक्षात्कार) की झलक एवं प्राप्ति :

आत्मा को समझने की सर्वोच्च प्राथमिकता से आत्मा की जागरूकता स्वतः कई बार बनी रही और भाग्य ने भी साथ दिया | इस प्रकार अक्टूबर 2016 के अंतिम सप्ताह में, अचानक एक क्षण के लिये, "**आत्मा की झलक**" का अनुभव हुआ| बाद में वैसी झलक कभी नहीं दिखाई दी | उस अनुभव को व्यक्त करना कठिन है - उस क्षण कुछ ऐसा लगा जैसे अब तक का सब ज्ञान छिन्नभिन्न हो गया और मेरे कार्मिक/जेनेटिक असहायपन छूट गये |

इस तरह अल्प आत्म-ज्ञान के अल्प प्रकाश में, निम्न अकल्पनीय प्राप्ति हो गयी | तब से "आत्म जागृति" अधिक बार और अधिक समय तक रहने से, निम्न परिणामों में वृद्धि हो रही है :

- कई प्रकार की पुरानी इच्छाएं, सहजता से समाप्त हो गयी | ये इच्छाएं वापस प्रकट नहीं हो रही हैं |
- नई इच्छाएं, स्वतः तुरन्त समाप्त हो रही हैं या अपने आप पूरी हो रही हैं |
- अन्तरिक्ष विज्ञान, भौतिक विज्ञान, चिकित्सा-ज्ञान आदि के बारे में खोज समाप्त हो गयी | इनके बारे में ईमेल की सदस्यता समाप्त कर दी | सीमित आवश्यक खोज होती है |
- अब तो पठन पाठन और सोच विचार छोड़ कर, सबसे आत्मीय-प्रेम (निस्वार्थ, आशा रहित और समभाव युक्त) से "आत्मीय-आनन्द" में जीना ही, अपने आप में "खोज" है निरन्तर "सीख" है |
- झूठ बोलना समाप्त हो गया | पहले किसी की या मेरी कष्टमय स्थिति में अथवा अपना अनुभव या कोई बात सिद्ध करने के लिए, तर्क-वितर्क करते समय झूठ बोला जाता था | अब वो बात नहीं है |
- पहले से ही अधिकतर डर - मृत्यु या मुझे कोई हानि पहुँचायेगा आदि डर - नहीं थे | पर अब बाकी डर, जैसे सीमित जगह में अकेला बंद होने का डर, बीमारी आदि का डर, समाप्त हो गये |
- करीब 30 वर्ष पहले हार्ट का बाईपास ऑपरेशन हुआ था | पहले उच्च रक्त चाप और बाद में हार्ट फेलियर (Diastolic dysfunction & Impaired systolic functions) की बीमारी की दवाएँ लेता था, वो छूट गयी | खैर, ज़रूरत पड़े तो कोई भी दवा वापस शुरू करने में हिचकिचाहट नहीं है |
- कई वर्षों से, एक सोच थी वो और पक्की हो गयी - जब मेरे पास भौतिक सामग्री देने को अथवा खोने को कुछ विशेष नहीं है और जो चाहिए, मांग लेता हूँ - अतः सुरक्षित महसूस करने और सब पर भरोसा करने की आदत सी हो गयी है |
- किसी के द्वारा, मेरे प्रति अथवा अन्य के प्रति, अनुचित व्यवहार होने पर, उनकी गलती नहीं मानी जाती है, क्योंकि उनका ऐसा व्यवहार, कर्मों का अथवा अज्ञान का फल है | सबसे जरूरी, सत्य को एक अलग दृष्टि से देखना आ गया है "जो है वही सत्य है" (Truth of as it is) |
- हाल ही में, नियमों के बंधन नहीं रहे | विवेक आधारित जीवनचर्या महत्वपूर्ण हो गयी |
- उपरोक्त सभी परिवर्तनों के कारण और "शान्ति" व "आत्म-जागृति" को सर्वोच्च प्राथमिकता आवंटित करने से, टकराव लगभग समाप्त हो गये हैं |
- विषय वासना में कमी आ गयी है |
- स्वयं के बारीक दोष, जो पहले नहीं दिखते थे, जैसे बारीक अहंकार, लोभ, आकर्षण, विकर्षण, ईर्ष्या, आदि बारीक रूप में, अब स्पष्ट नज़र आ रहे हैं और आत्म-शक्ति के उपयोग से, सहजता से छूटते जा रहे हैं |
- मेरे द्वारा किसी के प्रति अनुचित व्यवहार की खुलते ही, जल्दी ही प्रेम और आदर से, फ़ाइल बंद करने का प्रयास रहता है |
- सब जीवों में मेरी जैसी ही आत्मा होने के बारे में पूर्ण श्रद्धा होने से, सभी प्राणियों के प्रति "स्वार्थ-रहित मैत्री भाव" और "मंगल भाव" सुदृढ़ हो गये हैं |
- जीवन की कोई भी समस्या प्रकट होते ही, समाधान तुरन्त मिल जाता है |
- सुख, दुःख और हिंसा के बारे में समझ, स्पष्ट होती जा रही है |
  * किसी को दुखी करके, स्वयं सुखी नहीं हो सकते |
  * किसी को उसकी भावना एवं शक्ति से अधिक काम में लेना या किसी का दिल दुखाना हिंसा है |
  * हमारे छिपे हुए अहं का रूप बहुत गहरा और विशाल होता है | किसी के अहं को ठेस पहुँचाना हिंसा है |

* वर्तमान में, जब भी मन दुखी अथवा उदास हो तो उसमें अधिक सुखी होने का अवसर छिपा होता है और वो है "आत्म जागृति" में आ जाना |
* कोई मुझे दुखी नहीं कर सकता, "मेरे" अधिकतर कर्म भी नहीं | "मैं" और "मेरा" आदि, आत्म-दृष्टि से वास्तविक नहीं है | मेरे कर्म भी "वास्तविक मैं" में नहीं है | मेरा वास्तविक स्वरुप केवल "अनन्त-आनन्दमय-निज-आत्मा" है, बाकी सब भ्रम है | ऐसी मानसिकता से अधिकतर कर्म की निर्जरा सहज हो रही है | कुछ कर्म उदय में पहले ही आकर निर्जरित हो रहे हैं | कुछ कर्म की स्थिति और तीव्रता में कमी आ गयी है |

- 4 घाती कर्म हलके हो रहे हैं, विशेष रूप से 2 कर्म - मोहनीय कर्म और अन्तराय कर्म | बाकी 2 घाती कर्म ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय अपने आप धीरे धीरे क्षय होते जाते हैं, जब **मोहनीय कर्म** सहजता से (दबाव से नहीं) क्षय होते जाते हैं |

  मोहनीय कर्म के अन्तर्गत, "दर्शन" मोहनीय कर्म और "चारित्र" मोहनीय कर्म की निम्न स्थिति है |

  * "दर्शन" मोहनीय कर्म : आत्मा में निशंकित व अखंडित श्रद्धा हो गयी है |
  * "चारित्र" मोहनीय कर्म : 4 कषाय मोहनीय व 9 कषाय मोहनीय की स्थिति इस प्रकार हो गयी :

    4 कषाय मोहनीय कर्म (अहंकार, लोभ, माया, क्रोध) : अधिकतर संज्वलन श्रेणी और बहुत कम प्रत्याख्यानावरण श्रेणी तक सीमित रह गये हैं |

    ("संज्वलन" श्रेणी, पानी में खींची लकीर जैसी, जो खींचने के साथ ही मिटती जाती है)

    ("प्रत्याख्यानावरण" श्रेणी, रेत में खींची लकीर - हवा के चलने से कुछ समय बाद मिट जाती है)

    9 नो कषाय मोहनीय कर्म (हास्य, भय, शोक, जुगुप्सा अर्थात् घृणा/तिरस्कार, रुचि, अरुचि, 3 प्रकार के पुरुष स्त्री आकर्षण) : 4 मुख्य कषायों की मंदता के अनुसार मंदतर होते जा रहे हैं |

  अन्तराय कर्म के सम्बन्ध में, अधिकतर "आत्म-लाभ-अन्तराय" जनित बाधायें न केवल समाप्त हो रही है, वरन आत्म-साधना के लिए सहायक भी हो रही है | इसके मुख्य कारण है - "प्रतिक्रिया" और "अहंकार रहित समर्पण भाव" में वृद्धि, करुणा भाव में राग की कमी, किसी से आशा का लगभग परित्याग, अन्तराय को अन्तराय नहीं मानने से और आत्म जागृति, अर्थात आत्मा की जागरूकता में, आत्म-शक्ति के उपयोग में बढ़ोतरी |

- 4 अघाति कर्म में से 3, पूर्व जन्म के कर्मों पर आधारित, इस जन्म में स्थिर कर्म है, "गोत्र", "आयु" और "नाम" कर्म | आयु श्वास के हिसाब से निश्चित है - मृत्यु का क्षण 1 श्वास से भी आगे पीछे नहीं हो सकता | लेकिन इस भव में आयु, वर्षों के आधार से, बढती जा रही है, श्वास प्रति मिनट कम होने से (श्वास की कुल गिनती तो निश्चित है ही) | वैज्ञानिक अनुसन्धान से यह सिद्ध हो गया है कि, श्वास की गति कम होने पर, DNA में टेलोमेयर (telomere) की लम्बाई (जिसका सम्बन्ध जैविक उम्र से है) बढती है, अतः कालानुक्रमिक उम्र बढ़ रही है |

  यश और अपयश नाम कर्म की समझ से, इनके कारण सांसारिक सुख और दुःख अधिक नहीं होता है और अधिक देर तक टिकता नहीं है |

  चौथा अघाति कर्म है - "वेदनीय" | असाता-वेदनीय कर्म के कारण "वेदना" होती है, लेकिन "वेदना" के मुकाबले से "वेदन" अर्थात् पीड़ा का अहसास कम हो रहा है |

- इस लेख की और इससे सम्बंधित वेब साईट की आज "इतिश्री" कर, आखिरी इच्छा पूरी कर ली | खाने पीने, वस्त्र और छत आदि की इच्छा है, लेकिन इनकी कमी नहीं है |

  इस तरह निजी प्रतिबद्धता नगण्य होने से + परिवार के प्रति जिम्मेदारियां एवं मोह की कमी के कारण, अब निम्न कार्यों के लिए आराम से समय मिलना शुरू हो गया है |

* दैनिक स्वाध्याय - एक एक बारीक दोष पर्याय दिखने पर और उस बारे में मनन कर, उनका निवारण करना सरल हो गया है |
* नियमित रूप से घूमना, व्यायाम, प्राणायाम और शाम्भवी मुद्रा ध्यान सम्भव लगता है |
* "उत्सुक" व्यक्तियों के साथ उनकी व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं स्वास्थ्य सम्बंधित समस्याओं के समाधान और धर्मिक चर्चा आदि के लिए बैठक, फोन पर वार्तालाप अच्छा पासटाइम है |

निष्कर्ष :

- प्रत्येक व्यक्ति का "आन्तरिक वातावरण" - कर्म स्थिति, इच्छायें, समस्याएँ, मानसिकता, लक्ष्य, जीवन जीने के सिद्धांत, काम करने या काम करवाने के तरीके, क्षमता, आदि - और "बाहर का वातावरण" (घर में और बाहर) अलग अलग होता है | इन भिन्नताओं के कारण प्रत्येक व्यक्ति, कभी न कभी दुखी रहता ही है | "आत्मा" और उसके "अनन्त गुणों" में निशंकित और अखंडित श्रद्धा होने पर, उसका उपयोग करते हुए, "आत्म जागृति" में रह कर, अपने सब दुखों से छुटकारा पा सकता है |
- "आत्म-जागृति" के बाद "आत्म-अनुभूति की निरंतरता" ही मुक्ति है |
- अगर कोई व्यक्ति, आत्म-पुरुषार्थ से "आत्म जागृति" में नहीं रह सके और "आत्म-अनुभूति" नहीं कर सके, तो अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की व्यवस्था कर अथवा समता का मानस बना कर, अर्थात "बस और नहीं" का मानस बनने पर, अपने जीवन का बाकी समय शान्ति से - आनन्द में, निम्न प्रकार से, व्यतीत कर सकता है |

  दृष्टा भाव से, यथा संभव, जीवन जिया जाय | "दृष्य" तो परिवर्तन होते रहते हैं, लेकिन "दृष्टा भाव" में, जैसी भी परिस्थितियां जीवन प्रस्तुत करें, "दृष्य" में उलझे बिना, आत्मीय प्रेम, निस्वार्थ सेवा भाव और विवेक से, आनन्द में जीवन जिया जा सकता है | तब "इच्छा" प्रेरित व्यक्तिगत और सामाजिक एजेंडा, अपने आप छूट जायेंगे और इसके साथ पद-प्रतिष्ठा-पैसे आदि का लोभ और अहंकार भी अपने आप छूटते जायेंगे | ऐसी स्थिति में जीवन, अपने आप शान्ति और आनन्द की तरफ उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा |
- कितने ही शब्दों में, कोई भी एक शब्द को सम्पूर्ण रूप से समझने पर ज्ञात होता है कि, उस एक शब्द में सब ज्ञान समाया हुआ है | जैसे "शान्ति" शब्द - अगर किसी व्यक्ति में अहंकार है या लोभ है या क्रोध है या माया है या कोई आकर्षण है या कोई डर है या कोई भी इच्छा है, चाहे वो "पुण्य" करने की या "ज्ञान उपार्जन" की ही क्यों न हो, तब उसे "शान्ति" नहीं है | सम्पूर्ण शान्ति ही मुक्ति है |
- इस लेख में लिखित विचारों के बारे में चर्चा के लिए, आपका स्वागत है और संशोधन संभव है |

5 अक्टूबर 2017, संशोधित 31 अक्टूबर 2017

भीलवाड़ा (राजस्थान)

फोन (01482) 250464, +91 9351370880 **Email :** sgokharu@gmail.com